प्रकाशक
मंत्री, वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट,

●

ट्रस्ट-संस्थापक
आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर',

●

प्राप्तिस्थान
डॉ० दरबारीलाल कोठिया
मंत्री, वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट,
चमेली-कुटीर, १/१२८, डुमरांव कॉलोनी,
अस्सी, वाराणसी-५ (भारत)

●

प्रथम संस्करण   ११००
महावीर-निर्वाण-रजत-शती (दीपावली) वी नि सं २५०१
१३ नवम्बर, १९७४

मूल्य : दो रुपया पचास पैसा मात्र

●

मुद्रक
स्वस्तिक मुद्रणालय
गोलघर, वाराणसी

प्रकाशककी ओरसे

लगभग एक वर्ष पूर्वकी बात है। श्रद्धेय श्रीमान् पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, सिद्धान्ताचार्य, पूर्व प्राचार्य एवं वर्तमान अधिष्ठाता स्याद्वाद-महाविद्यालयके पास लिखित, किन्तु अप्रकाशित महत्त्वकी विपुल सामग्री देखी। इस सामग्रीमें उनकी लिखी हुई कई मौलिक छोटी छोटी कृतियाँ थी। जैनधर्म-परिचय, आरम्भिक जैनधर्म, करणानुयोग-प्रवेशिका, द्रव्यानुयोग-प्रवेशिका, चरणानुयोग-प्रवेशिका और भगवान् महावीरका जीवन-चरित ये छह रचनाएँ उसमें प्राप्त हुई। इनकी उपयोगिता, महत्ता और मौलिकताको ज्ञातकर श्रद्धेय पण्डितजीसे उन्हें वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्टसे प्रकाशित करनेकी अनुज्ञा माँगी। हमें प्रसन्नता है कि उन्होने सहर्ष स्वीकृति दे दी।

जैनधर्म-परिचय और आरम्भिक जैनधर्म ये दो रचनाएँ छपकर पाठकोके हाथोमे पहुँच चुकी है। आज करणानुयोग-प्रवेशिका, द्रव्यानुयोग-प्रवेशिका, चरणानुयोग-प्रवेशिका और भगवान् महावीरका जीवन-चरित ये चार कृतियाँ एक साथ अलग-अलग प्रकाशित हो रही है। आशा है पाठक इन्हे बडे चावसे अपनायेंगे।

हम इस महान् ज्ञान-दानके लिए श्रद्धेय पण्डितजीके हृदयसे आभारी है। पण्डितजी ट्रस्टके ट्रस्टी भी हैं, इससे भी हमे आपका सदैव परामर्शादि योगदान सहजमें मिलता रहता है। यह वस्तुत' उनका महान् अनुग्रह है।

ट्रस्ट-कमेटीका सहकार भी हमें प्राप्त है। उसीके कारण हम ट्रस्टसे लगभग १८ महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित कर सके हैं, अत उसे भी हम धन्यवाद देते है।

अस्सी, वाराणसी–५
फाल्गुनी अष्टाह्निका-पूर्णिमा, वी० नि० सं० २५०१
२७ मार्च, १९७५,

(डॉ०) दरबारीलाल कोठिया
मन्त्री,
वीर-सेवामन्दिर-ट्रस्ट

दो शब्द

बहुत समय पहले मैंने 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका'के अनुकरणपर करणानुयोग-प्रवेशिका, चरणानुयोग-प्रवेशिका और द्रव्यानुयोग-प्रवेशिका प्रश्नोत्तरके रूपमें रची थी। वे तीनो वीर-सेवामन्दिर-ट्रस्टके उत्साही कर्मठ मंत्री डॉ० दरबारीलालजी कोठिया न्यायाचार्यके सौजन्यवश ट्रस्टकी ओरसे प्रकाशित हो रही है।

प्रस्तुत करणानुयोग-प्रवेशिकामे ७४४ पारिभाषिक शब्दो का, जो करणानुयोगसे सम्बद्ध है, अर्थ दिया गया है। इसी तरह द्रव्यानुयोग-प्रवेशिकामे २९५ शब्दोकी और चरणानुयोग-प्रवेशिकामें ५८२ शब्दोकी परिभाषाएँ दी गयी है।

आशा है इन अनुयोगोके स्वाध्याय-प्रेमियोको और विद्वानोको भी इससे सहयोग मिलेगा। यदि ऐसा हुआ तो मैं अपने श्रमको सफल समझूँगा। यदि मैं कही स्खलित हुआ हू तो विद्वान् उसे सुधार लेवें और मुझे भी सूचित करें। मैंने आगमग्रन्थोके अनुसार ही प्रत्येक परिभाषा दी है।

कैलाशचन्द्र शास्त्री

स्याद्वाद-महाविद्याय,

भदैनी, वाराणसी।

●

१. प्रश्न—करणानुयोग किसे कहते है ?

उत्तर—जिसमे लोक और अलोकका विभाग, कालका परिवर्तन, गणित, गुणस्थान, मार्गणा तथा कर्मोके बन्ध आदि का वर्णन होता है उसे करणानुयोग कहते है।

२ प्र०—करण किसे कहते है ?

उ०—करण गणितको भी कहते है और जीवके भावको भी करण कहते है।

३ प्र०—परिकर्माष्टक किन्हे कहते है ?

उ०—सकलन, व्यवकलन, गुणकार, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल इन आठोको परिकर्माष्टक कहते हैं।

४. प्र०—संकलन किसे कहते है ?

उ०—लोक मे जिसे जोडना कहते हैं उसे ही सकलन कहते है। जैसे दो और दो चार होते है।

५ प्र०—व्यवकलन किसे कहते हैं ?

उ०—लोकमे जिसे घटाना या बाकी निकालना कहते है उसे व्यवकलन कहते है। जैसे चार मे से दो को घटाने से दो शेष रहते है।

६ प्र०—गुणकार किसे कहते है ?

उ०-गुणा करनेका नाम गुणकार है। जैसे चारको दोसे गुणा करनेपर आठ होते हैं।

७ प्र०—भागहार किसे कहते है ?

उ०—भाग देनेका नाम भागहार है। जैसे चारमे दोका भाग देनेसे दो लब्ध आता है।

८ प्र०—वर्ग किसे कहते है ?

उ०—समान दो राशियोका परस्परमे गुणा करनेका नाम वर्ग है। जैसे दोको दोसे गुणा करनेपर चार होना है। सो दोका वर्ग चार है। वर्गको कृति भी कहते है।

९. प्र०—घन किसे कहते है ?

उ०—समान तीन राशियोको परस्परमे गुणा करनेका नाम घन है। जैसे चारको तीन जगह रखकर परस्परमे गुणा करनेसे चौसठ होता है। सो चारका घन चौसठ है।

१० प्र०—वर्गमूल किसे कहते है ?

उ०—जिसका वर्ग करनेसे जो राशि होती है उसे उस राशिका वर्गमूल कहते है। जैसे, दोका वर्ग करनेसे चार राशि उत्पन्न होती है सो दो चारका वर्गमूल है।

११. प्र०—प्रथम द्वितीय आदि वर्गमूल किसे कहते है ?

उ०—जिस राशिका जो वर्गमूल होता है उसे उस राशिका प्रथम वर्गमूल कहते है। और प्रथम वर्गमूलका जो वर्गमूल होता है उसे उसी राशिका द्वितीय वर्गमूल कहते है। इसी तरह दूसरे वर्गमूलका जो वर्गमूल होता है उसे उसी राशिका तृतीय वर्गमूल कहते है। जैसे, पैसठ हजार पाँचसौ छत्तीसका प्रथम वर्गमूल दोसौ छप्पन, द्वितीय वर्गमूल सोलह, तृतीय वर्गमूल चार और चतुर्थ वर्गमूल दो होता है।

१२. प्र०—घनमूल किसे कहते है ?

उ०—जो राशि जिसका घन करनेसे होती है उस राशिका वह घनमूल होता है। जैसे चारका घन करनेसे चौसठ राशि होती है। अत. चौसठका घनमूल चार है।

१३. प्र०—त्रैराशिक किसे कहते है ?

उ०—प्रमाण फल और इच्छा ये तीन राशियाँ है। जिस प्रमाणसे जो फल उत्पन्न हो वह तो प्रमाण राशि ओर फल राशि है। और जितनी अपनी इच्छा हो उसका नाम इच्छा राशि है। ये तीन राशि स्थापित करके फल राशिको इच्छा राशिसे गुणा करके उसमे प्रमाण राशिको भाग देनेसे जो प्रमाण आवे वही लब्ध होता है, जैसे, चार हाथके छियानबे अगुल होते है तो दस हाथके कितने अगुल हुए ऐसा त्रैराशिक किया। यहाँ प्रमाण राशि चार हाथ, फल राशि छियानवे अगुल, और इच्छा राशि दस हाथ। सो दसको छियानवेसे गुणा करके उसमे चारका भाग देनेपर दोसौ चालीस अगुल लब्ध हुआ।

१४ प्र०—क्षेत्रफल किसे कहते है ?

उ०—लम्बाई, चौडाई, ऊँचाईमेसे जहाँ दो की विवक्षा हो एककी न हो उसे प्रतर क्षेत्र या वर्गरूप क्षेत्र कहते है। और लम्बाईको चौडाईसे गुणा करने

पर जो फल आता है उसे क्षेत्रफल कहते है। जैसे चार हाथ लम्बे और पाँच हाथ चौडे क्षेत्रका क्षेत्रफल २० हाथ हुआ।

१५. प्र०—घन क्षेत्रफल किसे कहते हे ?

उ०—जहाँ लम्बाई, चौडाई और ऊँचाई तीनोकी विवक्षा हो उसे घन क्षेत्र कहते है। और उसके क्षेत्रफलको खात फल या घन क्षेत्रफल कहते है। जैसे चार हाथ लम्बे, चार हाथ चौडे और पाँच हाथ ऊँचे क्षेत्रका खातफल ४×४×५=८० हाथ हुआ।

१६. प्र०—व्यास या परिधि किसे कहते है ?

उ०—गोलाकार क्षेत्रके बीचमे जितना विस्तार होता है उसे व्यास कहते है और गोलाकार क्षेत्रकी गोलाईके प्रमाणको परिधि कहते है।

१७ प्र०—परिधि और क्षेत्रफलका क्या नियम है ?

उ०—मोटे तौर पर व्यास से तिगुनी परिधि होती है। और परिधिको व्यासकी चौथाईसे गुणा करने पर क्षेत्रफल होता हे। तथा क्षेत्रफलको ऊँचाई या गहराईसे गुणा करने पर खातफल होता है।

१८ प्र०—मानके कितने भेद है ?

उ०—दो भेद है—लौकिक मान और लोकोत्तर मान।

१९ प्र०—लौकिक मान किसे कहते है ?

उ०—लोकमे प्रचलित मानको लौकिक मान कहते है। उसके छै भेद है—मान, उन्मान, अवमान, गणिमान, प्रतिमान और तत्प्रतिमान। अन्न वगैरह मापनेके बरतनोको मान कहते है। तराजूको उन्मान कहते है। चुल्लू वगैरहको अवमान कहते है जैसे एक चुल्लू जल। एक आदिको गणिमान कहते है जैसे एक दो तीन। गुजा आदिको प्रतिमान कहते है जैसे रत्ती मासा वगैरह। घोडेकी लम्बाई वगैरह देखकर उसका मूल्यऑकना तत्प्रतिमान है।

२० प्र०—लोकोत्तर मानके कितने भेद है ?

उ०—चार भेद है—द्रव्यमान, क्षेत्रमान, कालमान और भावमान। एक परमाणु जघन्य द्रव्यमान है और सव द्रव्योका समूह उत्कृष्ट द्रव्यमान है। एक प्रदेश जघन्य क्षेत्रमान है और समस्त आकाश उत्कृष्ट क्षेत्रमान है। एक समय जघन्य कालमान है और सर्वकाल उत्कृष्ट कालमान है। सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्य-

---

१७—त्रि० सा० गा० १७।

१८-१९—त्रि० सा० गा० ९। २०-२१—त्रि० सा० गा० ११-१२। २२–सख्यामान के भेदोका विस्तृत स्वरूप जाननेके लिये त्रिलोकसार गाथा १५–५१ देखो।

पर्याप्तक जीवका पर्याय श्रुतज्ञान जघन्य भावमान है और केवलज्ञान उत्कृष्ट भावमान है।

२१ प्र०—द्रव्यमान के कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद है—सख्यामान और उपमामान।

२२ प्र०—सख्यामान के कितने भेद हैं ?

उ०—तीन भेद है—सख्यात, असख्यात और अनन्त। असख्यातके तीन भेद है—परीतासख्यात, युक्तासख्यात और असख्यातासख्यात। अनन्तके भी तीन भेद है—परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्त। इस तरह सात भेद हुए। इनमे से भी प्रत्येकके जघन्य, मध्यम और उत्कृष्टके भेदसे तीन-तीन भेद है। इस तरह इक्कीस भेद हुए।

२३ प्र०—उपमा मानके कितने भेद है ?

उ०—आठ भेद है—पल्य, सागर, सूच्यगुल, प्रतरागुल, घनागुल, जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर और लोक।

२४. प्र०—पल्य किसे कहते है ?

उ०—पल्य कहते हे गड्ढेको। उस गड्ढेसे पाये गये कालको भी पल्य या पल्योपम कहते है।

२५ प्र०—पल्यके कितने भेद है ?

उ०—पल्यके तीन भेद है—व्यवहार पल्य, उद्धार पल्य और अद्धा पल्य। बाकीके दो पल्योके व्यवहारका मूल होनेसे प्रथम पल्यका नाम व्यवहार पल्य है। इसके द्वारा किसीको मापा नही जाता। दूसरेका नाम उद्धार पल्य है क्योकि उससे उद्धृत (निकाले गये) रोमोके आधारसे द्वीप और समुद्रोकी गणना की जाती है। तीसरेका नाम अद्धा पल्य है। अद्धा कालको कहते है अत: इससे मनुष्य तिर्यञ्च देव वगैरहकी आयु मापी जाती है।

२६ प्र०—व्यवहार पल्य किसे कहते है ?

उ०—प्रमाणागुलसे मापे गये योजन बरावर लम्बे-चौडे और गहरे अर्थात् दो हजार कोस गहरे और दो हजार कोस चौडे गोल गड्ढेमे, एक दिनसे लेकर सात दिन तकके जन्मे हुए मेढे के बालोको, कैंचीसे ऐसा काटकर कि जिसे फिर काटा न जा सके, खूब ठोककर भर दो। यह पहला व्यवहार पल्य है। सौ-सौ वर्षमे एक रोम निकालने पर जितने समयमे वह गड्ढा खाली हो उतने कालको व्यवहार पल्योपम काल कहते है।

२७. प्र०—उद्धार पल्य किसे कहते है ?

उ०—व्यवहार पल्यके प्रत्येक रोमके बुद्धिके द्वारा इतने टुकडे करो जितने असख्यात कोटि वर्षके समय होते है। और उन्हे दो हजार कोस गहरे और दो हजार कोस चौडे गोल गड्ढेमे भर दो। उसे उद्धार पल्य कहते है। उसमे से प्रति समय एक-एक रोम निकालने पर जितने समयमे वह खाली हो उतने कालको उद्धार पल्योपम कहते हैं।

२८ प्र०— अद्धा पल्य किसे कहते है ?

उ०—उद्धार पल्यके प्रत्येक रोमके पुनः इतने टुकडे करो जितने सौ वर्षमे समय होते है और उन्हे पूर्वोक्त प्रमाण गड्ढेमे भर दो। उसे अद्धा पल्य कहते है। उसमे से प्रति समय एक-एक रोम निकालने पर जितने समयमे वह गड्ढा खाली हो उतने कालको अद्धा पल्योपम कहते है।

२९ प्र०—अंगुलके कितने भेद है ?

उ०—अगुलके तीन भेद है—उत्सेधागुल, प्रमाणागुल और आत्मागुल।

३०. प्र०—उत्सेधागुल किसे कहते है ?

उ०—अनन्तानन्त परमाणुओके सघातसे एक उत्सज्ञा सज्ञा नामका स्कन्ध उत्पन्न होता है। आठ उत्सज्ञासज्ञा मिलकर एक सज्ञासज्ञा नामका स्कन्ध होता है। आठ सज्ञासज्ञा मिलकर एक त्रुटिरेणु होता है। आठ त्रुटिरेणु मिलकर एक त्रसरेणु होता है। आठ त्रसरेणु मिलकर एक रथरेणु होता हैं। आठ रथरेणु मिलकर एक देवकुरु-उत्तरकुरुके मनुष्यके केशका अग्रभाग होता है। उन आठके मिलनेसे एक रम्यक और हरिवर्षके मनुष्यके केशका अग्रभाग होता है। उन आठके मिलनेसे हैरण्यवत और हैमवत क्षेत्रके मनुष्यके केशका अग्रभाग होता है। उन आठके मिलनेसे भरत, ऐरावत और विदेह क्षेत्रके मनुष्यके केशका अग्रभाग होता है। उन आठके मिलनेसे एक लीख होती है। आठ लीखकी एक जूँ होती है। आठ जूँ का एक यवमध्य होता है और आठ यवमध्यो (जौके बीचके भागो) का एक उत्सेधागुल होता है।

३१. प्र०—उत्सेधागुलसे क्या मापा जाता है ?

उ०—उत्सेधागुलसे देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यञ्चोके शरीरकी ऊँचाई, देवोके निवास स्थान तथा नगरादि और अकृत्रिम जिनालयकी प्रतिमाओकी ऊँचाई मापी जाती है।

३२ प्र०—प्रमाणागुल किसे कहते है ?

उ०—उत्सेधागुलसे पाँच सौ गुना प्रमाणागुल होता है। यही अवसर्पिणी

३२—त्रि० प्र० गा० १,११०। ३४—त्रि० प्र० गा० १,१११।

कालके प्रथम चक्रवर्ती भरतका आत्मागुल होता है। उस समय उसीसे ग्राम नगर आदिका माप किया जाता था।

३३ प्र०—प्रमाणांगुलसे क्या मापा जाता है ?

उ०—द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुड, सरोवर और भरत आदि क्षेत्रोका माप प्रमाणागुलसे ही होता है।

३४ प्र०—आत्मागुल किसे कहते है ?

उ०—भरत और ऐरावत क्षेत्रमे जिस-जिस कालमे जो मनुष्य हुआ करते है उस-उस कालमे उन्ही मनुष्योके अगुलका नाम आत्मागुल है।

३५ प्र०—आत्मांगुलसे क्या मापा जाता है ?

उ०—झारी, कलश, दर्पण, भेरी, शय्या, गाडी, हल, मूसल, अस्त्र, सिंहासन, चमर, छत्र, मनुष्योके निवास स्थान, नगर, उद्यान आदिका माप अपने-अपने समयके आत्मागुलसे होता है।

३६. प्र०—योजन किसे कहते है ?

उ०—छै अगुलका एक पाद, दो पादकी एक वितस्ति (वालिश्त), दो वितस्तिका एक हाथ, चार हाथका एक धनुप और दो हजार धनुषका एक योजन होता है।

३७. प्र०—सागर किसे कहते है ?

उ०—दस कोडाकोडी व्यवहार पल्योका एक व्यवहार सागरोपम, दस कोडा कोडी उद्धार पल्योका एक उद्धार सागरोपम और दस कोड़ाकोडी अद्धापल्योका एक अद्धा सागरोपम होता है।

३८ प्र०—कोड़ाकोड़ी किसे कहते है ?

उ०—एक करोड़को एक करोडसे गुणा करनेपर जो लब्ध आये उसे कोड़ा-कोड़ी कहते है।

३९. प्र०—सूच्यंगुल किसे कहते है ?

उ०—अद्धापल्यके जितने अर्द्धच्छेद हो उतनी जगह अद्धापल्यको रखकर परस्परमे गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उतने आकाश प्रदेशोकी मुक्तावली करनेपर एक सूच्यगुल होता है। सो एक अगुल लम्बे प्रदेशोका प्रमाण जानना।

४० प्र०—अर्द्धछेद किसे कहते है ?

उ०—किसी राशिके आधा-आधा होनेके वारोको अर्द्धच्छेद कहते है। अर्थात् जो राशि जितनी वार समरूपसे आधी-आधी हो सकती है उसके उतने ही अर्द्ध-

च्छेद होते है। जैसे सोलहके अर्द्धच्छेद चार होते है क्योकि सोलह राशि चार बार आधी-आधी हो सकती है—८, ४, २, १।

४१ प्र०—प्रतरागुल किसे कहते है ?

उ०—सूच्यगुलके वर्गको प्रतरागुल कहते है।

४२ प्र०—घनांगुल किसे कहते है ?

उ०—सूच्यगुलके घनको घनागुल कहते है। सो एक अगुल लम्बा, एक अगुल चौडा, और एक अगुल ऊँचा प्रदेशोका परिमाण जानना।

४३. प्र०—जगच्छ्रेणी किसे कहते है ?

उ०—पल्यके अर्द्धच्छेदोके असख्यातवे भाग प्रमाण घनागुलको रखकर उन्हे परस्परमे गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसे जगच्छ्रेणी कहते है। सो सात राजु लम्बी आकाशके प्रदेशोकी पक्ति प्रमाण जाननी चाहिये।

४४ प्र०—जगत्प्रतर या प्रतरलोक किसे कहते है ?

उ०—जगच्छ्रेणीके वर्गको अर्थात् जगत्श्रेणोको जगत्श्रेणीसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसे जगत्प्रतर या प्रतरलोक कहते है। सो जगच्छ्रेणी प्रमाण लम्बे और चौडे क्षेत्रमे जितने प्रदेश आये उतना जानना चाहिये।

४५. प्र०—घनलोक किसे कहते है ?

उ०—जगत्श्रेणीके घनको लोक अथवा घनलोक कहते है। सो जगत्श्रेणी प्रमाण लम्बे चौडे और ऊँचे क्षेत्रमे जितने प्रदेश आये उतना जानना चाहिये।

४६ प्र०—राजू किसे कहते है ?

उ०—जगत्श्रेणीके सातवे भागको राजू कहते है।

२

४७ प्र०—लोक किसे कहते है ?

उ०—जितने आकाशमे धर्म अधर्म आदि छै द्रव्य पाये जाते है तथा जीव और पुद्गलोका गमनागमन होता है उतने आकाशको लोक अथवा लोकाकाश कहते है।

४८ प्र०—लोक कहाँपर स्थित है ?

उ०—समस्त आकाशके मध्य भागमे लोक स्थित है। उसके बाहर सब ओर अनन्त आकाश है जिसे अलोकाकाश कहते है।

४९. प्र०—इस लोकको किसने कब रचा है ?

उ०—यह लोक अकृत्रिम है, किसीका बनाया हुआ नही है, इसकी न आदि है और न अन्त है, यह सदासे है और सदा रहेगा।

५०. लोकका आकार कैसा है ?

उ०—अपने दोनो पैरोको फैलाकर तथा दोनो हाथ कटि प्रदेशके दोनो ओर रखकर खडे हुए पुरुषका जैसा आकार होता है वैसा ही लोकका आकार है। अथवा आधे मृदगको खडा करके उसके ऊपर पूरे मृदगको खडा रखनेसे जैसा आकार होता है वैसा ही लोकका आकार है।

५१ प्र०—लोककी मोटाई, चौड़ाई और ऊँचाई कितनी है ?

उ०—लोककी मोटाई उत्तर और दक्षिण दिशामे सर्वत्र सात राजू है, चौडाई पूरब और पश्चिम दिशामे नीचे जडमे सात राजू है। ऊपर क्रमसे घटकर सात राजूकी ऊँचाई और चौडाई एक राजू है। फिर क्रमसे बढकर साढे दस राजूकी ऊँचाईपर चौडाई पाँच राजू है। फिर क्रमसे घटकर चौदह राजूकी ऊँचाईपर चौड़ाई एक राजू है। तथा नीचेसे ऊपर तक ऊँचाई चौदह राजू है।

५२ प्र०—लोकके कितने भेद है ?

उ०—लोकके तीन भेद है—अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक। अधोलोक की ऊँचाई सात राजू है, मध्यलोकको ऊँचाई एक लाख योजन है और ऊर्ध्व-लोककी ऊँचाई एक लाख योजन कम सात राजू है।

५३ प्र०—अधोलोकका विशेष स्वरूप क्या है ?

उ०—आधे मृदगके आकार अधोलोकमे नीचे-नीचे क्रमसे रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातम प्रभा ये सात पृथिवियाँ एक-एक राजूके अन्तरालसे है। इनका रूढि नाम क्रमसे घर्मा, वशा, मेघा, अजना, अरिष्टा, मधवी और माघवी है। इन पृथिवियोमे क्रमसे तीस लाख, पच्चीस लाख, दस लाख, तीन लाख, पाच कम एक लाख और पाच, इस तरह चौरासी लाख नरक विल है। पहली पृथ्वीसे लेकर पाचवी पृथिवीके तीन चौथाई भाग पर्यन्त तो अति गर्मी है और पाचवी पृथिवीके शेष चतुर्थ भागमे तथा छठी और सातवी पृथिवीके अतिठड है। इनमे रहनेवाले नारकियोको क्षणभरके लिये भी सुख नही मिलता।

५४ प्र०—नारकियोकी आयु कितनी होती है ?

उ०—सातो नरकोमे क्रमसे एक, तीन, सात, दस, सतरह, बाईस और तेतीस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है। तथा जघन्य स्थिति प्रथम नरकमे दस हजार वर्ष है और आगेके नरकोमे अपनेसे पहले नरकमे जो उत्कृष्ट स्थिनि है वही उनमे जघन्य स्थिति है।

५५. नारकियोके शरीरकी ऊँचाई कितनी है ?

उ०—प्रथम नरकमे शरीरकी ऊँचाई सात धनुष तीन हाथ छै अगुल है, आगेके नरकोमे यह ऊँचाई दूनी-दूनी है।

५६ नरकसे निकला हुआ जीव कहाँ जन्म लेता है ?

उ०—नरकसे निकला हुआ जीव मनुष्य और तिर्यञ्च गतिमे ही जन्म लेता हे तथा कर्म भूमिमे सैनी पर्याप्तक और गर्भज ही होता है, भोगभूमिमे जन्म नही लेता और न असज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक होता है। किन्तु सातवे नरकसे निकला हुआ जीव सज्ञी पर्याप्तक गर्भज तिर्यञ्च ही होता है मनुष्य नही होता।

५७ प्र०—नरकसे निकलकर जीव क्या-क्या नही होता ?

उ०—नरकसे निकला हुआ जीव मनुष्य पर्यायमे जन्म लेनेपर भी नारायण, बलभद्र और चक्रवर्ती नही हो सकता। तथा चौथे आदि नरकोसे निकला हुआ तीर्थङ्कर भी नही होता, पाँचवी आदि नरकोसे निकला हुआ जीव मोक्ष नही जा सकता। छठी आदि नरकोसे निकला हुआ मुनि पद धारण नही कर सकता और सातवे नरकसे निकला हुआ पहले गुणस्थानमे ही रहता है, ऊपरके गुण-स्थानोमे नही चढता।

५८ प्र०—कौन जीव किस नरक तक जन्म ले सकता है ?

उ०—असज्ञी पञ्चेन्द्रिय प्रथम नरक तक, सरीसृप दूसरे नरक तक, पक्षी तीसरे नरक तक, सर्प चौथे तक, सिंह पाँचवे तक, स्त्री छठे तक और मनुष्य तथा मत्स्य सातवे नरक तक जन्म ले सकते है।

५९. मध्यलोकका विशेष स्वरूप क्या है ?

उ०—मध्यलोकके बीचोबीच एक लाख योजन चौडा और थालीकी तरह गोल जम्बूद्वीप है। जम्बूद्वीपके बीचमे एक लाख योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत है। एक हजार योजन जमीनके भीतर इसका मूल है। निन्यानबे हजार योजन पृथिवीके ऊपर है और चालीस योजनकी इसकी चूलिका (चोटी) है। तीनो लोकोका मापक होनेसे इसे मेरु कहते है। मेरुके नीचे अधोलोक है, मेरुके ऊपर लोकके

५७—त्रि० सा० गा० २०४।

अन्त पर्यन्त ऊर्ध्वलोक है और मेरुकी ऊँचाईके बराबर मध्यलोक है। जम्बूद्वीपके बीचमे पश्चिम पूरब लम्बे छै कुलाचल (पर्वत) पडे हुए है उनसे जम्बूद्वीपके सात खण्ड हो गये हे। प्रत्येक खण्डमे एक-एक क्षेत्र है। उनके नाम इस प्रकार है—भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हेरण्यवत और ऐरावत। भरत क्षेत्रका विस्तार उत्तर-दक्षिण पाँच सौ छब्बीस योजन और एक योजनके उन्नीस भागोमेसे छै भाग है। भरत क्षेत्रके बीचमे पश्चिम पूरब लम्बा विजयार्ध पर्वत पडा हुआ है। उससे भरतके दो भाग हो गये है—एक उत्तर भरत और एक दक्षिण भरत। हिमवान पर्वतसे निकलकर गंगा और सिन्धु नामकी नदियाँ उत्तर भरत क्षेत्रमेसे वहती हुई विजयार्ध पर्वतकी गुफाओसे निकलकर दक्षिण भारतमे वहती है और लवण समुद्रमे मिल जाती है। उनके कारण भरत क्षेत्रके छै खण्ड हो गये है। भरत क्षेत्रसे दूना विस्तार हिमवान् पर्वतका है और हिमवान्से दूना विस्तार हैमवत क्षेत्रका हे। इस तरह विदेह क्षेत्र तक दूना-दूना विस्तार होता जाता है और फिर आगे आधा-आधा विस्तार होता जाता है। विदेह क्षेत्रके बीचमे मेरु पर्वत है। मेरुसे उत्तर तरफ उत्तरकुरु है और दक्षिण तरफ देवकुरु है। जम्बूद्वीपको चारो तरफसे खाईकी तरह वेढे हुए दो लाख योजन चौडा लवण समुद्र है। लवण समुद्रको चारो तरफसे वेढे हुए चार लाख योजन चौडा धातकीखण्ड द्वीप है। इस धातकी खण्ड द्वीपमे उत्तर और दक्षिणकी ओर उत्तर दक्षिण लम्बे दो इष्वाकार पर्वत पडे हुए है। उनसे विभक्त हो जानेसे इस द्वीपके दो भाग हो गये है-एक पूर्व धातकीखण्ड और दूसरा पश्चिम धातकीखण्ड। दोनो भागोके बीचमे एक-एक मेरु पर्वत है और उनकी दोनो ओर क्षेत्र कुलाचल वगैरहकी रचना जम्बूद्वीपकी तरह है। इस तरह धातकी खण्डमे सब रचना जम्बूद्वीपसे दूनी है। धातकीखण्डको चारो तरफसे वेढे हुए आठ लाख योजन चौडा कालोदधि समुद्र है और कालोदधिको बेढे हुए सोलह लाख योजन चौडा पुष्करद्वीप है। पुष्कर द्वीपके बीचोबीच चूडीके आकार मानुषोत्तर नामा पर्वत पडा हुआ है जिससे पुष्करद्वीपके दो खण्ड हो गये हैं। पुष्कर द्वीपके पूर्वार्ध भागमे धातकीखण्डकी तरह ही सब रचना है। जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीप तथा लवणोदधि समुद्र और कालोदधि समुद्र इतने क्षेत्रको मनुष्य लोक कहते है, क्योकि मानुषोत्तर पर्वतसे आगे मनुष्योका वास नही है। पुष्करद्वीपसे आगे परस्पर एक दूसरेको बेढे हुए दूने दूने विस्तार वाले मध्यलोकके अन्त पर्यन्त असख्यात द्वीप समुद्र है। सबके अन्तमे स्वय सुरक्षा नामका द्वीप और उसको घेरे हुए स्वयभू-रमण नामका समुद्र है।

६०. प्र०—कर्मभूमि किसे कहते है ?

उ०—जहाँ असि, मषि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प इन छै कर्मोकी प्रवृत्ति हो उसे कर्मभूमि कहते है।

६१ प्र०—कर्मभूमियाँ कितनी है ?

उ०—पाँच मेरु सम्वन्धी पाँच भरत, पाँच ऐरावत और देवकुरु उत्तरकुरुको छोडकर पाँच विदेह इस प्रकार सव मिलकर १५ कर्मभूमियाँ है।

६२ प्र०—भोगभूमि किसे कहते है ?

जहाँ दस प्रकारके कल्पवृक्षोसे प्राप्त भोगोको ही भोगा जाता है और छै कर्मोकी प्रवृत्ति नही है उसे भोगभूमि कहते है।

६३ प्र०—भोगभूमियाँ कितनी है ?

उ०—सव भोगभूमियाँ तीस है। जिनमेसे पाँच मेरु सम्वन्धित, पाँच हैमवत और पाँच हैरण्यवत इन दस क्षेत्रोमे जघन्य भोगभूमि है। पाँच हरि ओर पाँच रम्यक्र इन दस क्षेत्रोमे मध्यम भोगभूमि है। और पाँच देवकुरु और पाँच उत्तर-कुरु इन दस क्षेत्रोमे उत्तम भोगभूमि है।

६४ प्र०—क्या भरतादि क्षेत्रोमे सदा एक सी ही अवस्था रहती है ?

उ०—भरत और ऐरावत क्षेत्रोमे अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालके छै समयोके द्वारा परिवर्तन हुआ करता है। शेष क्षेत्रोमे सदा एक-सा ही काल बरतता है।

६५ प्र०—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल किसे कहते है ?

उ०—जिस कालमे मनुष्य और तिर्यञ्चोकी आयु शरीरकी ऊँचाई ओर विभूति आदि घटते रहते है उसे अवसर्पिणी काल कहते है और जिस कालमे ये बढते रहते है उसे उत्सर्पिणी काल कहते है।

६६ प्र०—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालके छै भेद कौन से है ?

उ०—सुषमासुषमा, सुपमा, सुपमा दुपमा, दुषमा सुपमा, दुपमा और अति-दुषमा ये छै अवसर्पिणी कालके भेद है और अतिदुषमासे सुपमासुपमा पर्यन्त छै भेद उत्सर्पिणी कालके है।

६७. प्र०—भरत क्षेत्रमे परिवर्तनका क्रम कैसा है ?

उ०—सुषमासुषमा कालके आदिमे भरत क्षेत्रमे उत्तम भोग-भूमि रहती है। सुषमासुषमा कालका प्रमाण चार कोडाकोडी सागर है। फिर क्रमसे हानि होते होते सुपमा कालका आरम्भ होता है। उसमे मध्यम भोगभूमि रहती है उसका प्रमाण तीन कोडाकोडी सागर है। फिर क्रमसे हानि होते होते सुपमा-

दुपमा काल आरम्भ होता है उसमे जघन्य भोगभूमि रहती है। तीसरे कालमे एक पल्योपमका आठवाँ भाग काल शेप रहने पर कुलकर उत्पन्न होते है। जो भोगभूमिसे कर्मभूमि होते समय जो कठिनाइयाँ उपस्थित होती है उन्हे दूर करके जनताका उपकार करते है। अन्तिम कुलकरके पश्चात् यहाँ चौथा दुषमसुषमा काल वरतने लगता है और कर्मभूमिका आरम्भ होता है। इस कालमे यहाँ त्रेसठ शलाका पुरुप उत्पन्न होते है। वीर भगवान्का निर्वाण होनेके पश्चात् तीन वर्ष, आठ मास ओर एक पक्ष बीतने पर पाँचवें दुपमा कालका प्रवेश होता है। उसका प्रमाण इक्कीस हजार वर्ष है। इस कालमे धर्म वगैरहका ह्रास होता जाता है। जब इस कालमे तीन वर्ष साढे आठ मास शेष रहते है तो अन्तिम मुनि आयका श्रावक और श्रविकाका मरण होता है और धर्मका उच्छेद हो जाता है। तब अतिदुषमा नामका छठा काल आता है, वह भी इक्कीस हजार वर्षका होता है। इस कालमे उनचास दिन शेप रहने पर भरत क्षेत्रमे प्रलयकाल आ जाता है। प्रलयकाल उनचास दिनके बीतनेपर अवसर्पिणीकाल समाप्त हो जाता है और उत्सर्पिणीकाल प्रवेश करता है। इसके आरम्भमे ४९ दिनतक सुहावनी वर्षा होती है जिससे प्रलयकालमे जली हुई पृथ्वी शीतल हो जाती है और पहाडोकी गुफाओमे छिपे हुए स्त्री-पुरुप फिरसे इसपर वसना आरम्भ कर देते है। उत्सर्पिणीके प्रथम अतिदुपमा कालके बीत जाने पर दूसरा दुपमाकाल आरम्भ होता है। इस कालमे एक हजार वर्ष शेप रहने पर भरत क्षेत्रमे चौदह कुलकर उत्पन्न होते हैं। जो मनुष्योको अग्नि जलाना ओर उसपर भोजन पकानेकी शिक्षा देते हैं तथा विवाहकी प्रथा प्रचलित करते है। फिर तीसरा दुषमसुषमा काल प्रवेश करता है। इस कालमे पुन त्रेसठ शलाका पुरुप उत्पन्न होते हैं। तीसरे कालके बीतने पर चौथा सुषमादुषमाकाल प्रवेश करता है उस समय यहाँ जघन्य भोगभूमि हो जाती है। इसके पश्चात् पाँचवाँ सुपमाकाल प्रविष्ट होता है उस समय मध्यम भोगभूमि होती है। फिर सुपमासुपमा नामक छठाँ काल प्रवेश करता है तब उत्तम भोगभूमि हो जाती है। उत्सर्पिणी कालके बीतने पर पुन अवसर्पिणी काल आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार भरत और ऐरावत क्षेत्रमे अवसर्पिणीके पश्चात् उत्सर्पिणी और उत्सर्पिणीके पश्चात् अवसर्पिणीका क्रम चला करता है। असख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणो बीतने पर एक हुण्डावसर्पिणी काल आता है जिसमे कुछ विचित्र बातें होती है।

६८ प्र०—हुण्डावसर्पिणीके चिन्ह क्या है ?

उ०—हुण्डावसर्पिणी कालमे तीसरे सुषमादुपमा कालके रहते हुए ही कर्म-

६८—त्रि० प्र०, अधि० ४, गा० १६१६–१६२३।

भूमिका आरम्भ होने लगता है। उस कालमे प्रथम तीर्थकर और प्रथम चक्रवर्ती भी उत्पन्न हो जाते है। कुछ जीव मोक्ष भी चले जाते है। चक्रवर्तीका मान भग होता है, वह एक नये वर्ण ब्राह्मणकी रचना करता है। चौथे दुषमासुषमा कालमे ६३ मेसे ५८ शलाका पुरुष ही जन्म लेते है। नौवेसे सोलहवे तीर्थङ्कर तक सात तीर्थङ्करोके तीर्थमे धर्मका विच्छेद हो जाता है। सातवे, तेईसवे और अन्तिम तीर्थङ्करपर उपसर्ग होता है। ग्यारह रुद्र और नौ नारद होते है। पाँचवे दुषमा कालमे चाण्डाल आदि जातियाँ तथा कल्की उपकल्की होते है। ये अनेक नई बाते हुण्डावसर्पिणी कालमे होती हैं।

६९ प्र०—त्रेसठ शलाका पुरुष किन्हे कहते है?

उ०—चौबीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण और नौ प्रतिनारायण ये त्रेसठ शलाका पुरुष अर्थात् गणनीय महापुरुष कहे जाते है।

७० प्र०—चौबीस तीर्थङ्करोके नाम क्या है?

उ०—ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयास, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व और वर्द्धमान ये भरत क्षेत्रमे उत्पन्न हुए चौबीस तीर्थङ्करोके नाम हे।

७१. प्र०—चौबीस तीर्थङ्करोका जन्म स्थान कहाँ है?

उ०—ऋषभनाथ, अजितनाथ, अभिनन्दन नाथ, सुमतिनाथ, और अनन्त नाथका जन्मस्थान अयोध्या है। सभवनाथका जन्मस्थान श्रावस्ती नगरी है, पद्मप्रभका जन्मस्थान कौशाम्बी है, सुपार्श्व और पार्श्वनाथका जन्मस्थान वाराणसी (बनारस) है, चन्द्रप्रभका जन्मस्थान चन्द्रपुरी और श्रेयासनाथका जन्मस्थान सिहपुरी (बनारसके पास सारनाथ) है। पुष्पदन्तका जन्म स्थान काकन्दी, शीतलनाथका भद्दलपुर (भेलसा), वासुपूज्यका चम्पानगरी, विमल नाथका कपिला, धर्मनाथका रत्नपुरी (अयोध्याके पास), शान्ति, कुन्थु और और अरनाथका हस्तिनापुर, मल्लिनाथ और नमिनाथका मिथिलापुरी, नमिनाथका शौरीपुर (बटेश्वरके पास), मुनिसुव्रतनाथका राजगृह और वर्धमानका जन्मस्थान कुण्डलपुर है।

७२ प्र०—चौबीस तीर्थङ्करोके निर्वाणस्थान कौनसे है?

उ०—भगवान् ऋषभदेवका निर्वाणस्थान कैलास पर्वत है, वासुपूज्यका चम्पापुर, नेमिनाथका गिरनार पर्वत और महावीर वर्द्धमानका निर्वाणस्थान पावापुरी है। और शेष तीर्थङ्करोकी निर्वाण-भूमि सम्मेद शिखर पर्वत है।

७३. प्र०—ऊर्ध्वलोकका विशेष स्वरूप क्या है ?

उ०—मेरुसे लेकर सात राजू ऊँचा ऊर्ध्वलोक है। उसमे छे राजूकी ऊँचाईमे सोलह स्वर्ग है। सो मेरुतलसे लेकर डेढ राजूकी ऊँचाईमे सौधर्म और ईशान स्वर्ग है। उनके इकतीस पटल है। सो मेरुकी चोटीसे एक बालके अग्र भाग बराबर अन्तराल छोडकर प्रथम पटल है। उसके ऊपर असख्यात योजनका अन्तराल छोडकर दूसरा पटल है। इसी तरह असख्यात असख्यात योजनका अन्तराल छोडकर ऊपर-ऊपर पटल है। प्रत्येक पटलके बीचमे जो एक विमान होता है उसे इन्द्रक विमान कहते है। सो मेरुके ऊपर ऋतु नामका इन्द्रक विमान है। उसीकी सीधमे ऊपर-ऊपर प्रत्येक पटलमे एक-एक इन्द्रक विमान जानना चाहिये। प्रत्येक पटलमे उस इन्द्रक विमानकी चारो दिशाओमे पक्तिबद्ध विमान है उन्हे श्रेणिबद्ध कहते है। तथा उन श्रेणिबद्ध विमानोके बीचमे विदिशाओमे जो विमान बखेरे हुए फूलोकी तरह स्थित है उन्हे प्रकीर्णक कहते है। प्रत्येक पटल सम्बन्धी उत्तर दिशाके श्रेणीबद्ध विमान और वायव्य तथा ईशान विदिशाके प्रकीर्णक विमान ईशान इन्द्रके अधीन है, अत उन्हे ईशान स्वर्ग कहते हैं। और शेष सब इन्द्रक विमान, तीन दिशाके श्रेणिबद्ध विमान और नैऋत्य तथा आग्नेय विदिशाके प्रकीर्णक विमान सौधर्मेन्द्रके अधीन है अत: उन्हे सौधर्म स्वर्ग कहते है। सौधर्म ऐशान युगलसे ऊपर डेढ राजूकी ऊँचाईमे सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग है। इनके सात पटल है। सो सौधर्म युगलके अन्तिम पटलसे असख्यात योजन ऊपर प्रथम पटल है। उसके ऊपर असख्यात असख्यात योजनका अन्तराल छोड़ छोडकर द्वितीय आदि पटल है। इनमे भी उक्त प्रकारसे इन्द्रक आदि विमान है। उनमेसे उत्तर दिशाके श्रेणिविमान और वायव्य तथा ईशान कोनके प्रकीर्णक विमान उत्तरेन्द्र महेन्द्रके अधीन है अत. उन्हे माहेन्द्र स्वर्ग कहते है। शेष विमान दक्षिणेन्द्र सनत्कुमारके अधीन है अतः उन्हे सानत्कुमार स्वर्ग कहते है। इस तरह ऊपर-ऊपर अन्य युगल तथा उनके पटल जानना। इतना विशेष है कि सानत्कुमार युगलसे ऊपर शेप छै युगल आधे-आधे राजूमे स्थित है। इस तरह छै राजूमे सोलह स्वर्ग है। तथा ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगल, लान्तव-कापिष्ठ युगल, शुक्र-महाशुक्र युगल और शतार-सहस्रार युगलोमे एक-एक ही इन्द्र है तथा आनत-प्राणत युगल और आरण-अच्युत युगलोमे दो दो इन्द्र है। उनमे आनत और आरण दक्षिणेन्द्र है तथा प्राणत और अच्युत उत्तरेन्द्र है। आरण अच्युत स्वर्गके अन्तसे ऊपर एक राजूकी ऊँचाईमे कल्पातीत देव रहते है। उनमे सबसे प्रथम ग्रैवेयक है। ग्रैवेयकके तीन विभाग है, अधोग्रैवेयक, मध्यग्रैवेयक और उपरिम ग्रैवेयक। प्रत्येकके तीन-तीन पटल है। सो अच्युत स्वर्गके अन्तसे ऊपर असख्यात योजन अन्तराल छोड़कर अधोग्रैवेयकका प्रथम पटल है। उसके ऊपर

इसी तरह अन्तराल छोड-छोडकर ऊपर-ऊपर पटल है। उपरिम ग्रैवेयकके अन्तिम पटल से ऊपर असख्यात योजन अन्तराल छोडकर नौ अनुदिश विमान है। सो बीचमे एक इन्द्रक विमान है, चारो दिशाओमे चार श्रेणिवद्ध विमान है और चारो विदिशाओमे चार प्रकीर्णक विमान है। उनसे असख्यात योजन ऊपर पाँच अनुत्तर विमान है। उनके बीचमे सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमान है और चारो दिशाओमे विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजित नामक चार श्रेणिविमान है। पाँच अनुत्तरोसे बारह योजन ऊपर सिद्ध क्षेत्र है।

७४ प्र०—स्वर्गोमे देवांगनाओकी उत्पत्ति कहाँ होती है ?

उ०—सब कल्पवासिनी देवागनाएँ सौधर्म और ईशान स्वर्गमे ही उत्पन्न होती है। पीछे वे जिन देवोकी नियोगिनी होती है वे देव उन्हे अपने अपने स्वर्गोमे ले जाते है।

७५. प्र०—स्वर्गोमे जन्म और मरणका अन्तर काल कितना है ?

उ०—यदि किसी स्वर्गमे किसीका जन्म न हो या कोई न मरे तो उसका उत्कृष्ट विरह काल क्रमसे सौधर्म युगलमे सात दिन, दूसरे युगलमे एक पक्ष, फिर चार स्वर्गोमे एक मास, फिर चार स्वर्गोमे दो मास, फिर चार स्वर्गोमे छै मास और शेष ग्रैवेयक वगैरहमे छै मास जानना।

७६ प्र०—स्वर्गोमे देवागनाओकी आयुका प्रमाण कितना है ?

उ०—सौधर्म आदि सोलह स्वर्गोमे देवागनाओकी उत्कृष्ट आयु क्रमसे पाँच, सात, नौ, ग्यारह, तेरह, पन्द्रह, सतरह, उन्नीस, इक्कीस, तेईस, पच्चीस, सत्ताईस, चौतीस, इकतालीस, अडतालीस और पचपन पल्य है। और जघन्य आयु सौधर्म युगलमे कुछ अधिक एक पल्य है।

७७. प्र०—स्वर्गोमे देवोकी आयुका प्रमाण कितना है ?

उ०—सौधर्म युगलमे देवोकी जघन्य आयु एक पल्यसे कुछ अधिक है। उत्कृष्ट आयु सौधर्म युगलमे, कुछ अधिक दो सागर, सानत्कुमार माहेन्द्र कल्पमे कुछ अधिक सात सागर, ब्रह्म ब्रह्मोत्तरमे कुछ अधिक दस सागर, लांतव कापिष्ठ स्वर्गमे कुछ अधिक चौदह सागर, शुक्र महाशुक्रमे कुछ अधिक सोलह सागर, शतार सहस्रारमे कुछ अधिक अठारह सागर, आनत प्राणतमे बीस सागर, और आरण अच्युतमे बाईस सागर है। इससे आगे नौ ग्रैवेयकोमे क्रमसे तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है। नौ अनुदिशोमे बत्तीस सागर और पाँचअनुत्तरोमे

---

७५ त्रि० सा० गा० ५४२।

तेतीस सागर उत्कृष्ट आयु है। तथा नीचेके युगलमे जो उत्कृष्ट आयु है, वही एक समय अधिक ऊपरके युगलमें जघन्य आयु है।

७८ प्र०—सहस्रार स्वर्ग तक ही कुछ अधिक आयु होनेका कारण क्या है ?

उ०—जो सम्यग्दृष्टि घातायुष्क होता है उसके अपने अपने स्वर्गकी उत्कृष्ट आयुसे अन्तर्मुहूर्तकम आधा सागर प्रमाण आयु अधिक होती है। और ऐसा जीव सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त ही जन्म लेता है।

७९. प्र०—घातायुष्क किसे कहते है ?

उ०—जिस जीवने पूर्व भवमे आयुका वध किया, पीछे वह आयु घटकर थोडी रह गई उस जीवको घातायुष्क कहते हे।

८०. प्र०—लौकान्तिक देवोका विशेष स्वरूप क्या है ?

उ०—लौकान्तिक देव व्रह्मलोक स्वर्गके अन्तमे रहते है, सव समान होते है, व्रह्मचारी होनेसे देवर्पिके तुल्य माने जाते है। अन्य देव उनकी पूजा करते है, तीर्थङ्करोके तपकल्याणकके समय उन्हे प्रतिवोधन करनेके लिये जाते है। इनकी आयु आठ सागर होती हे।

८१. प्र०—स्वर्गसे चयकर निर्वाण पानेवाले देव कौन कौन हैं ?

उ०—सौधर्म स्वर्गका इन्द्र, उसकी पट्टदेवी शची, उसके चारो लोकपाल, सानत्कुमार आदि सव दक्षिण इन्द्र, सव लौकान्तिक देव और सवार्थसिद्धिके सव देव वहाँसे चयकर मनुष्य हो, नियमसे मोक्ष प्राप्त करते हैं।

८२ प्र०—कौन जीव किस स्वर्ग तक जन्म ले सकता है ?

उ०—असयत या देशसयत मनुष्य और असयत तथा देशसयत तिर्यञ्च अधिकसे अधिक १६वे स्वर्ग तक जन्म लेते है। द्रव्यलिगी निर्ग्रन्थ साधु उपरिम ग्रैवेयक तक जन्म ले सकते हैं। सम्यक्दृष्टि महाव्रती सर्वार्थसिद्धि तक जन्म ले सकते है। सम्यग्दृष्टि भोगभूमिया जीव सौधर्म युगल तक और मिथ्यादृष्टि भोगभूमिया जीव भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोमे जन्म लेते है। पञ्चाग्नि तप तपनेवाले तपस्वी अधिकसे अधिक भवनवासी आदि तीन प्रकारके देवोमे जन्म लेते है। चरक और परिव्राजक सन्यासी व्रह्मस्वर्ग तक, तथा आजीवक सम्प्रदायके साधु सोलहवे स्वर्ग तक जन्म ले सकते हैं।

८३ प्र०—देवोके विशेष भेद कौनसे है ?

उ०—देवोके चार भेद है—भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक।

८४ प्र०—भवनवासी देवोके कितने भेद है?

उ०—भवनवासी देवोके दस भेद है—असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार।

८५. प्र०—भवनवासी देव कहाँ रहते है ?

उ०—रत्नप्रभा पृथिवीके पङ्कबहुल भागमे असुरकुमारोके भवन है और खर भागमे शेष नौ कुमारोके भवन है। भवनोमे रहनेके कारण इन्हे भवनवासी कहते है।

८६ प्र०—भवनवासी देवोंकी आयु कितनी है ?

उ०—असुरकुमारोकी एक सागर, नागकुमारोकी तीन पल्य, सुपर्णकुमारोकी अढाई पल्य, द्वीपकुमारोकी दो पल्य, तथा शेष छै कुमारोकी डेढ-डेढ पल्य उत्कृष्ट आयु होती है। तथा सबकी जघन्य आयु दस हजार वर्ष है।

८७. प्र०—व्यन्तर देवोके कितने भेद है ?

उ०—आठ भेद है—किन्नर, किपुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच।

८८ प्र०—व्यन्तर देव कहाँ रहते है ?

उ०—विविध देशान्तरोमे रहनेवाले देवोको व्यन्तर कहते है। सो यो तो चित्रा और वज्रा पृथिवीके मध्यसे लेकर मेरु पर्वतकी ऊँचाई पर्यन्त मध्य लोकमे व्यन्तरोका निवास है किन्तु रत्नप्रभा पृथिवीके पकबहुल भागमे राक्षस और खर पृथिवी भागमे शेष सात प्रकार के व्यन्तर रहते है।

८९. प्र०—व्यन्तर देवों की आयु कितनी है ?

उ०—व्यन्तर देवोकी उत्कृष्ट आयु एक पल्यसे अधिक है और जघन्य आयु दस हजार वर्ष है।

९० प्र०—ज्योतिष्क देवोके कितने भेद है ?

उ०—ज्योतिष्क देवोके पॉच भेद है—सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारा। चूँकि ये ज्योति (चमक) वाले होते है इसलिये इन्हे ज्योतिष्क कहते है।

९१. प्र०—ज्योतिष्क देव कहाँ रहते है ?

उ०—चित्रा पृथिवीसे सात सौ नब्बे योजन ऊपर तारे है। तारोसे दस योजन ऊपर सूर्य है। सूर्यसे अस्सी योजन ऊपर चन्द्रमा है। चन्द्रमासे चार योजन ऊपर नक्षत्र है। नक्षत्रोसे चार योजन ऊपर बुध है। बुधसे तीन योजन ऊपर शुक्र है। शुक्रसे तीन योजन ऊपर बृहस्पति है। बृहस्पतिसे तीन योजन

ऊपर मगल हे। मगलसे तीन योजन ऊपर शनैश्चर है। इस तरह चित्रासे सात सौ नव्वे योजन ऊपरसे लेकर नौसौ योजन पर्यन्त एक सौ दस योजनकी मोटाईमे ज्योतिष्क देव रहते हैं।

९२. प्र०—ज्योतिष्क देवोके विमानोका आकार आदि कैसा है ?

उ०—गोल नीबूको बीचमेसे काटकर आधे भागको चौड़ा भाग ऊपरकी ओर करके रखनेसे जैसा आकार होता है वैसा ही आकार सब ज्योतिष्क विमानोका है। सो चन्द्रमाके विमानका व्यास एक योजनके इकसठ भागोमेसे छप्पन भाग है। और सूर्यके विमानका व्यास अड़तालीस भाग है। राहु और केतुके विमानका व्यास कुछ कम एक योजन है। ये दोनो विमान क्रमसे चन्द्रमा और सूर्यके विमानके नीचे चलते हैं और छै मास बीतने पर पर्वके दिन चन्द्रमा और सूर्यको ढक लेते है। इसीका नाम ग्रहण हे।

९३. प्र०—एक चन्द्रमाका परिवार कितना है ?

उ०—एक चन्द्रमाके परिवारमे एक सूर्य, ८८ ग्रह, अट्ठाईस नक्षत्र और छियासठ हजार नौसौ पचहत्तर कोडाकोड़ी तारे है।

९४ प्र०—ज्योतिष्क देवोका विशेष स्वरूप क्या है ?

उ०—मनुष्य लोक अर्थात् अढाई द्वीप और दो समुद्रोमे ज्योतिष्क विमान मेरुपर्वतसे ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूर रहकर सदा उसके चारो ओर घूमा करते है। इनके घूमनेसे ही दिन रात होता है। सूर्यका गमन क्षेत्र एक सौ अस्सी योजन जम्बूद्वीपमे है और तीन सौ तीस योजन लवणसमुद्रमे है। एक सौ तिरासी दिनमे सूर्य अपने गमन क्षेत्रको पूरा करता है। श्रावण मासमे सूर्य एकदम अन्दर होता है और फिर बाहरकी ओर गमन करना प्रारम्भ कर देता है इसीको दक्षिणायन कहते है। माघ मासमे सूर्य एकदम बाहर होता है और फिर बाहरसे अन्दरकी ओर आना शुरू करता है। इसीको उत्तरायण कहते हैं। जब सूर्य एकदम अभ्यन्तरमे होता है तब १८ मूहूर्त (करीब साढे चौदह घटे) का दिन और बारह मुहूर्त (साढे नौ घटे) की रात होती है और जब एकदम बाहर होता है तो १८ मुहूर्तकी रात और बारह मुहूर्तका दिन होता है। प्रचलित चान्द्रमासके अनुसार इकसठवे दिन एक तिथिके घटनेसे वर्षमे तीन सौ चौवन दिन होते है जबकि सौर मासके हिसाबसे वर्षमे तीन सौ छियासठ दिन होते है। अत: वर्षमे बारह दिन बढनेसे अढाई वर्ष बीतनेपर एक मास अधिक होता है और वर्षमे तेरह मास होते हैं। मनुष्य लोकसे बाहर भी ज्योतिष्क देव है किन्तु वे चलते नही है स्थिर है ।

९५ प्र०—ज्योतिष्क देवोकी आयु कितनी है ?

उ०—ज्योतिष्क देवोकी उत्कृष्ट आयु एक पल्यसे अधिक है और जघन्य आयु पल्यके आठवे भाग है।

९६ प्र०—सिद्धोका क्षेत्र कहाँ पर है ?

उ०—तीनो लोकोके ऊपर ईपत्प्रागभार नामकी आठवी पृथिवी है उसके मध्यमे श्वेत छत्रके आकार गोल और मनुष्य लोकके समान पैतालीस लाख योजन चौडा सिद्ध क्षेत्र है। उसके ऊपर तनुवातवलयमे सिद्ध भगवान् विराजमान रहते है।

९७. प्र०—वातवलयका स्वरूप क्या है ?

उ०—जैसे वृक्षकी छाल होती है वैसे ही लोकको घेरे हुए वातवलय है—वलयके आकार वायु है। वे तीन है—लोकके घेरे हुए घनोदधि वातका वलय है, उसके ऊपर घन वातका वलय है, और उसके ऊपर तनुवातका वलय है। लोकके नीचे और पार्श्वोमे नीचेसे लगाकर एक राजूकी ऊँचाई पर्यन्त एक-एक वातवलय बीस-बीस हजार योजन मोटा है। और एक राजूसे ऊपर एक साथ घटकर तीनो वातवलयोकी मोटाई क्रमसे सात, पाँच और चार योजन है। फिर क्रमसे घटता हुआ मध्यलोकके निकट तीनोका बाहुल्य क्रमसे पाँच, चार और तीन योजन है। फिर क्रमसे बढते हुए ब्रह्मलोकके निकटमे तीनोका बाहुल्य क्रमसे सात, पाँच और चार योजन है। फिर क्रमसे घटते हुए ऊर्ध्वलोकके निकटमे तीनोका बाहुल्य क्रमसे पाँच, तीन और चार योजन है।

९८ प्र०—त्रसनालीका स्वरूप क्या है ?

उ०—लोकके मध्यमे त्रसनाली है। लोकके नीचेसे लेकर लोकके ऊपर अन्तपर्यन्त चौदह राजू ऊँचो है और एक राजू लम्बी तथा एक राजू चौडी है। त्रस जीव इसीमे रहते है इसीसे इसे त्रसनाली कहते है। इसके बाहर शेष लोकमे स्थावर जीव ही पाये जाते है।

९९. प्र०—तिर्यञ्च कहाँ रहते है ?

उ०—तिर्यञ्चोमे एकेन्द्रिय जीव तो सर्वलोकमे रहते है, विकलत्रय (दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीव) कर्मभूमिमे और अन्तके आधे द्वीप तथा अन्तके स्वयभूरमण समुद्रमे ही रहते है। तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च मध्यलोकमे रहते है। किन्तु जलचर तिर्यञ्च लवणसमुद्र, कालोदधि समुद्र और स्वयभूरमण समुद्रके सिवाय अन्य समुद्रोमे नही है।

-९८ त्रि० सा० गा० १४३।

१००. प्र०— मनुष्य कहाँ रहते हैं ?

उ०—मनुष्य केवल मनुष्यलोक (जम्बूद्वीप, लवण समुद्र, धातकीखण्ड, कालोदधि और पुष्करार्धद्वीपमे ही रहते है।

३

१०१. प्र०—प्ररूपणा किसको कहते है ?

उ०—कथन करनेका नाम प्ररूपणा है जैसे जीवका कथन करनेको जीव-प्ररूपणा कहते है।

१०२ प्र०—जीवप्ररूपणाके कितने प्रकार है ?

उ०—सक्षेपसे तो दो ही प्रकार है—एक गुणस्थान और दूसरा मार्गणा। इन्हीके विस्तारसे जीवप्ररूपणाके बीस भेद हो जाते है—गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, उपयोग और १४ मार्गणाएँ।

१०३. प्र० – गुणस्थान किसको कहते है ?

उ०—दर्शन मोहनीय आदि कर्मोके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमसे होनेवाले जीवके भावोको गुण कहते है। उन गुणोकी तारतम्यरूप अवस्था विशेषको गुण-स्थान कहते है।

१०४ प्र०—गुणस्थानके कितने भेद है ?

उ०—गुणस्थानके चौदह भेद है—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तसयत, अप्रमतसयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसापराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगकेवली, अयोगकेवली।

१०५. प्र०—गुणस्थानोके ये नाम होनेका कारण क्या है ?

उ०—मोहनीय कर्म और योग। क्योकि आदिके चार गुणस्थान तो दर्शन मोहनीय कर्मके निमित्तसे होते है, पाँचवेसे लगाकर बारहवे गुणस्थान पर्यन्त आठ गुणस्थान चारित्रमोहनीयके निमित्तसे होते है। और तेरहवाँ तथा चौदहवाँ गुण-स्थान योगोके निमित्तसे होता है।

१०६ प्र०—मिथ्यात्व गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—दर्शन मोहनीयके भेद मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे होनेवाले अतत्त्व श्रद्धानरूप जीवके भावको मिथ्यात्व गुणस्थान कहते है। यह गुणस्थान दर्शन-

मोहनीयके उदयसे होता है इसीसे इसमे औदयिक भाव कहा है। इस गुणस्थान-वाला मिथ्यादृष्टि जीव यथार्थ वस्तुका श्रद्धान नही करता। और जैसे पित्त-ज्वर वाले रोगीको मीठा दूध अच्छा नही लगता वैसे ही उसे धर्म भी अच्छा नही लगता।

१०७ सासादन गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—प्रथमोपशम अथवा द्वितीयोपशम सम्यक्त्वके कालमे कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक छै आवलीकाल शेष रहनेपर, अनन्तानुबन्धी कषाय-के चार भेदोमेसे किसी एक कषायका उदय होनेसे जो जीव अपने सम्यक्त्वसे च्युत हो जाता है उसे सासादन सम्यग्दृष्टि कहते है। अर्थात् सम्यक्त्वरूपी पर्वतकी चोटीसे गिरकर मिथ्यात्व रूपी भूमिकी ओर आनेवाला जीव सासादन सम्यग्दृष्टि है। इस गुणस्थानमे पारिणामिक भाव कहा है क्योकि यह गुणस्थान दर्शन मोहनीय कर्मके उदय वगैरहकी अपेक्षासे नही होता किन्तु अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे होता है और अनन्तानुबन्धी कषाय चारित्रमोहनीयका भेद है।

१०८. प्र०—प्रथमोपशम सम्यक्त्व और द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमे क्या अन्तर है ?

उ०—मिथ्यादृष्टि जीवके अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन सात प्रकृतियोके उपशम होनेसे चौथे आदि गुणस्थानोमे जो उपशम सम्क्त्व होता है उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते है। और सातवे गुणस्थानमे उपशमश्रेणी चढनेके सम्मुख अवस्थामे क्षायोपशमिक सम्यक्त्वसे जो उपशम सम्यक्त्व होता है उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते है।

१०९ प्र०—मिश्र गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—सम्यक्मिथ्यात्व मोहनीयके उदयसे न तो केवल मिथ्यात्वरूप परिणाम होते है और न केवल सम्यक्त्वरूप परिणाम होते है। किन्तु मिले हुए दही और गुडकी तरह एक जुदी ही जातिरूप सम्यक्मिथ्यात्व परिणाम होते है। इसीको मिश्रगुण स्थान कहते है।

११० प्र०—मिश्र गुणस्थानकी विशेषता क्या है ?

उ०—मिश्र गुणस्थानसे पाँचवे आदि गुणस्थानोमे चढना शक्य नही है। तथा मिश्र गुणस्थानमे अगले भवकी आयुका वन्ध नही होता और न मरण ही होता है।

१११ प्र०—चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—औपशमिक, क्षायोपशमिक अथवा क्षायिक सम्यक्त्वसे सहित होते हुए

जो जीव चारित्र मोहनीयका उदय होनेसे व्रतोसे रहित होता है उसे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान वाला कहते है। साराश यह है कि वह न तो इन्द्रियोके विषयोका त्यागी होता है और न त्रस और स्थावर जीवोकी हिसाका त्यागी होता है, केवल जिनेन्द्र देवके द्वारा कहे हुए उपदेशपर अपनी आस्था रखता है। चौथे गुणस्थानसे लेकर आगेके सभी गुणस्थानोमे नियमसे सम्यक्त्व होता है।

११२. प्र०—देशविरत अथवा विरताविरत नामक पाँचवें गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय होनेसे यद्यपि सकलसयम नही होता किन्तु एकदेशसयम होता है। इसहीको देशविरत कहते है। इस देशविरत गुणस्थानवाला जीव त्रस हिसासे तो विरत होता है और स्थावर जीवोकी हिंसासे विरत नही होता। इसलिये इसे विरताविरत या सयतासयत भी कहते है।

११३. प्र०—प्रमत्तविरत नामक छठे गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ० – चारित्रमोहनीयका क्षयोपशम होनेसे सकलसयमके होते हुए भी जिस मुनिके प्रमादका सद्भाव होता है वह प्रमत्तविरत नामक छठे गुणस्थानवर्ती होता है।

११४. प्र०—प्रमाद किसे कहते है ?

उ०—अच्छे कार्योमे उत्साहके न होनेका नाम प्रमाद है।

११५. प्र०—प्रमादके कितने भेद है ?

उ०—पन्द्रह भेद है - चार विकथा (स्त्रीकथा, भोजनकथा, राष्ट्रकथा और राजकथा), चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), पाँच इन्द्रियाँ, एक निद्रा और एक स्नेह।

११६ प्र०—अप्रमत्तविरत नामक सातवे गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—सज्वलनकषाय और नोकषायोका मन्द उदय होनेसे प्रमादरहित सयम भावको अप्रमत्तविरत गुणस्थान कहते है ?

११७ प्र०—अप्रमत्त विरतके कितने भेद है ?

उ०—दो भेद है—स्वस्थान अप्रमत्त और सातिशय अप्रमत्त।

११८. प्र०—स्वस्थान अप्रमत्त किसे कहते है ?

उ०— जो समस्त प्रमादोको नष्ट करके, व्रत गुण और शीलसे भूषित है, धर्म ध्यानमे लीन उस ज्ञानी मुनिको स्वस्थान अप्रमत्त कहते है।

११९ प्र०—सातिशय अप्रमत्त किसे कहते है ?

उ०—जो अप्रमत्तविरत उपशम श्रेणि अथवा क्षपक श्रेणि चढनेके अभिमुख होता हुआ, चारित्रमोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोका उपशम अथवा क्षय करनेमे निमित्तभूत अध करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीन प्रकारके परिणामोमेसे पहले अध.करणको करता है उसे सातिशय अप्रमत्त कहते है।

१२०. प्र०—श्रेणि चढनेसे क्या अभिप्राय है ?

उ०—सातवे गुणस्थानसे आगे गुणस्थानोकी श्रेणियाँ है—एकका नाम उपशम श्रेणि है और दूसरीका नाम क्षपकश्रेणि है। प्रत्येक श्रेणिमे चार-चार गुणस्थान होते है। जिनमे यह जीव क्रमसे ऊपर जाता है। इसीको श्रेणि चढना कहते हैं।

१२१. प्र०—उपशम श्रेणि किसे कहते है ?

उ०—जिसमे चारित्र मोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोका उपशम किया जाये उसे उपशम श्रेणि कहते है।

१२२. प्र०—उपशम श्रेणिके गुणस्थान कौन-कौन है ?

उ०—आठवा, नौवा, दसवा और ग्यारहवा ये चार गुणस्थान उपशम श्रेणिके है।

१२३ प्र० क्षपकश्रेणि किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमे चारित्र मोहनीयकी २१ प्रकृतियोका क्षय किया जाता है उसे क्षपकश्रेणि कहते है।

१२४ प्र०—क्षपक श्रेणिके गुणस्थान कौनसे है ?

उ०—आठवा, नौवा, दसवा और बारहवा, ये चार गुणस्थान क्षपक श्रेणिके है।

१२५ प्र०—श्रेणि चढनेका पात्र कौन है ?

उ०—सातवें गुणस्थानवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टी और द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी ही श्रेणि चढ सकते है। क्षायिक सम्यग्दृष्टी उपशम श्रेणि भी चढ सकता है और क्षपक श्रेणि भी चढ सकता है किन्तु द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी केवल उपशमश्रेणि ही चढ सकता है, क्षपकश्रेणि नही चढ सकता। तथा प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टी और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टी श्रेणि नही चढ सकते।

१२६. प्र०—प्रथमोपशम सम्यक्त्व अथवा क्षायोपशमिक सम्यक्त्ववाला किस विधिसे श्रेणि चढनेका पात्र बन सकता है ?

उ०—प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाला प्रथमोपशम सम्यक्त्वको छोडकर क्षायोपशमिक सम्यक्त्वको ग्रहण करे। फिर अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण

रूप परिणामोके द्वारा पहले अनन्तानुबन्धी कषायका विसयोजन करे और अन्तर्मुहूर्त काल तकका विश्राम लेकर पुन अध करण आदि रूप परिणाणोके द्वारा या तो दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोका उपशम करके द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी हो जाये या उनका क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टी हो जाये। तब श्रेणि चढनेका पात्र हो सकता है।

१२७ प्र०—विसंयोजन किसे कहते है ?

उ०—अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभके कर्म परमाणुओको बारह कषाय और नव नोकषायरूप परिणमानेको विसयोजन कहते है।

१२८ प्र०—अधःकरण किसको कहते है ?

उ०—जिस करणमे ऊपरके समयमे वर्तमान जीवके परिणाम जैसी विशुद्धताको लिये हुए हो, वैसी ही विशुद्धताको लिये हुए परिणाम नीचेके समयमे वर्तमान जीवके भी होते है उसे अध प्रवृत्तकरण कहते है। जैसे, दो जीवोने एक साथ अध.प्रवृत्तकरणको प्रारम्भ किया। द्वितीय आदि समय बीतनेपर उनमेसे एक जीवके परिणाम जैसी विशुद्धताको लिये हुए होते हैं, दूसरे जीवके वैसी विशुद्धताको लिये हुए परिणाम प्रथम समयमे भी होते है। इस प्रकार इस करणमे ऊपर और नीचेके समय सम्बन्धी परिणामोकी समानता और असमानता होनेसे इसे अध प्रवृत्तकरण कहते है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है।

१२९ प्र०—अपूर्वकरण किसको कहते है ?

उ०—जिसमे प्रति समय अपूर्व अपूर्व परिणाम हो उसे अपूर्वकरण गुणस्थान कहते है। साराश यह है कि इस करणमे ऊपरके समयोमे स्थित जीवोके और नीचेके समयोमे स्थित जीवोके परिणाम कभी भी समान नही होते। किन्तु एक ही समयमे स्थित जीवोके परिणाम समान भी होते है और समान नही भी होते। जैसे, जिन जीवोको अपूर्वकरणमे आये पाँचवाँ समय है, उन जीवोके जैसे परिणाम होते है वैसे परिणाम जिन जीवोको अपूर्वकरणमे आये एक दो तीन या चार अथवा छै समय हुए है, उनके कभी भी नही होते। तथा पाँचवे समयमे वर्तमान जीवोके परिणाम परस्परमे समान भी होते है और नही भी होते। इसका काल भी अन्तर्मुहूर्त है।

१३० प्र०—अधःकरण और अपूर्वकरणमे क्या अन्तर है ?

उ०— अध करणमे भिन्न-भिन्न समयोमे वर्तमान जीवोके परिणामोमे जैसे समानता होती है अपूर्वकरणमे वह नही होती। तथा अध करणमे जैसे एक समयमे स्थित जीवोके परिणामोमे समानता और असमानता दोनो होती है वैसे अपूर्वकरणमे भी होती है।

१३१ प्र०—अनिवृत्तिकरण किसको कहते है ?

उ० – जिस करणमे भिन्न समयवर्ती जीवोके परिणाम असमान ही होते हे और एक समयवर्ती जीवोके परिणाम समान ही होते है, उसको अनिवृत्तिकरण कहते है। जैसे, जिन जीवोको अनिवृत्तिकरणमे आये हुए पाँचवाँ समय है उन त्रिकालवर्ती जीवोके परिणाम परस्परमे समान ही होते हे, हीन अधिक नही होते। तथा वे परिणाम, जिन जीवोको अनिवृत्तिकरणमे आये हुए चौथा समय हुआ है, उनके विशुद्ध परिणामोसे अनन्तगुणे विशुद्ध होते है। इसी तरह जिन जीवोको अनिवृत्तिकरणमे आये हुए छठा समय हुआ हे, उनके परिणाम पाँचवे समयवर्ती जीवोके विशुद्ध परिणामोसे अनन्तगुणे विशुद्ध होते है। इसी तरह सर्वत्र जानना।

१३२ प्र०—सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—जिस गुणस्थानमे अत्यन्त सूक्ष्म अवस्थाको प्राप्त लोभ कपाय मात्रका उदय शेप रहता है उसको सूक्ष्म साम्पराय नामका दसवाँ गुणस्थान कहते है।

१३३ प्र०—उपशान्त कषाय गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—जैसे गदले पानीमे फिटकरी डालनेसे पानी ऊपरसे निर्मल हो जाता है और गाद उसके नीचे वैठ जाती है वैसे ही जिस जीवका मोहनीय कर्म पूरी तरहसे उपशान्त हो जाता हे, वह जीव उपशान्त कषाय नामक दसवे गुण-स्थानवाला कहा जाता है। इस गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त है। काल पूरा हो जानेपर मोहनीयका उदय हो आता है, जिससे इस गुणस्थानवाला जीव गिरकर नीचेके गुणस्थानोमे आ जाता हे।

१३४ प्र०—क्षीण कषाय गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—मोहनीय कर्मकी समस्त प्रकृतियोका क्षय हो जानेसे जिसका चित्त स्फटिकके पात्रमे रखे हुए जलके समान निर्मल होता है उसको क्षीण कषाय गुण-स्थानवाला कहते है।

१३५. प्र०—उपशान्त कषाय और क्षीण कषायमे क्या अन्तर है ?

उ०—उपशान्त कपाय जीवके यद्यपि मोहका उदय नही है फिर भी मोहनीय कर्मकी सत्ता हे किन्तु क्षीण कपाय जीवके मोहनीय कर्मका उदय भी नही है और अस्तित्व भी नही है। फिर भी दोनोके ही परिणामोमे कपायोका अभाव हे अत: दोनोके यथाख्यात चारित्र होता हे और दोनो ही वाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहसे रहित होनेके कारण निर्ग्रन्थ कहे जाते है।

१३६. प्र०—सयोग केवली गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—जो केवलज्ञानरूपी सूर्यके द्वारा लोगोका अज्ञानरूपी अन्धकार दूर करते है और क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, इन नौ केवललब्धियोके प्रकट होनेसे जो परमात्मा कहे जाते है उनको सयोगकेवली गुणस्थानवर्ती कहते है। आशय यह है कि योगकी मुख्यता होनेसे उन्हे सयोग कहते है, केवलज्ञानी होनेसे केवली कहते है और घाति कर्मोका निर्मूल नाश कर देनेसे वे जिन कहे जाते है। इस तरह उसका पूरा नाम सयोगकेवली जिन सार्थक है।

१३७. प्र०—अयोगकेवली गुणस्थानका क्या स्वरूप है ?

उ०—समस्त कर्मोका आस्रव रुक जानेसे जिनके नवीन कर्मबन्धका सर्वथा अभाव है तथा मनोयोग वचनयोग और काययोगसे रहित होनेके कारण जो अयोग कहे जाते है उनको अयोगकेवली कहते है।

१३८ प्र०—किस गुणस्थानसे जीव किस गुणस्थानमे जा सकता है ?

उ०—मिथ्यादृष्टि तीसरे, चौथे, पाँचवे और सातवे गुणस्थानको प्राप्त कर सकता है। दूसरे सासादनगुणस्थानवाला जीव गिरकर मिथ्यात्वमे ही आता है, ऊपर नही चढ सकता। मिश्र गुणस्थानवाला पहले या चौथे गुणस्थानको प्राप्त होता है। अविरत सम्यग्दृष्टी और देशविरत, अप्रमत्त सयत गुणस्थान तक प्रमत्त सयतके सिवाय अन्य किसी भी गुणस्थानको प्राप्त हो सकते है। प्रमत्त सयत गुणस्थानवाला अप्रमत्त संयत पर्यन्त द्वेगुणस्थानोमेसे किसी भी गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है। अप्रमत्त संयत गुणस्थानवाला छठे गुणस्थानको या अपूर्वकरण गुणस्थानको प्राप्त होता है। उपशम श्रेणिवाले जीव उपशम श्रेणिके गुणस्थानोपर क्रमसे ही चढते है और क्रमसे ही उतरते है। अर्थात् अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानवाले एक अपनेसे नीचेके और एक अपनेसे ऊपरके, इस तरह दो ही गुणस्थानोको प्राप्त कर सकते है। और उपशान्त कषाय गुणस्थानवाला ऊपर नही चढता, नीचे ही आता है अत वह एक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानको ही प्राप्त होता है। क्षपक श्रेणिवाले जीव आठवे, नौवे, दसवे और बारहवे आदि गुणस्थानमे क्रमसे चढते है।

१३९. प्र०—किस गुणस्थानमे मरण होता है ?

उ०—तीसरे गुणस्थानमे तथा क्षपक श्रेणिके चार गुणस्थानोमे और तेरहवें गुणस्थानमे मरण नही होता। शेष गुणस्थानोमे होता है।

---

१३८ कर्मकाण्ड. गा० ५५७–५५९।

१४० प्र०—किस गुणस्थानसे मरकर जीव किस गतिमे जाता है ?

उ०—पहले और चौथे गुणस्थानसे मरकर जीव चारो गतियोमेसे किसी भी गतिमे जा सकता है। सासादनसे मरकर नरक गतिमे नही जाता, शेष तीनोमेसे किसी भी गतिमे जा सकता हे। चौदहवे गुणस्थानसे मुक्ति होती हे। और शेष सात गुणस्थानोसे मरकर जीव नियमसे देवगतिमे जन्म लेता है।

१४१ प्र०—किन अवस्थाओमे मरण नही होता ?

उ०—मिश्र काययोगवाले, प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाले और सातवे नरकमे दूसरे आदि गुणस्थानोमे वर्तमान जीवोका मरण नही होता। अनन्तानुबन्धीका विसयोजन करके जो जीव मिथ्यात्व गुणस्थानमे आ जाता है एक अन्तर्मूहूर्त तक उसका मरण नही हो सकता। दर्शन मोहका क्षय करनेवाला जव तक कृतकृत्य नही हो जाता तव तक उसका मरण नही होता।

१४२ प्र०—जीव समास किसे कहते है ?

उ०—जिनके द्वारा अथवा जिनमे सव ससारी जीवोका सग्रह किया जाता है उन्हे जोवसमास कहते हे।

१४३. प्र०—संक्षेपसे जीवसमासके कितने भेद है ?

उ०—चौदह भेद है—एकेन्द्रियके दो भेद—वादर और सूक्ष्म, विकलेन्द्रियके तीन भेद—दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय, तथा पञ्चेन्द्रियके दो भेद—सैनी और असैनी। ये सातो पर्याप्तक और अपर्याप्तकके भेदसे दो-दो प्रकारके होते है।

१४४. प्र०—विस्तारसे जीवसमासके कितने भेद है ?

उ०—अट्ठानवे-एकेन्द्रियके वयालीस, विकलेन्द्रियके नौ, पञ्चेन्द्रियके सैतालीस।

१४५. प्र०—एकेन्द्रियके बयालीस भेद कौनसे है ?

उ०—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, और साधारण वनस्पतिकायिकके दो भेद नित्यनिगोद और इतरनिगोद ये छहो वादर भी होते है और सूक्ष्म भी होते है अत वारह भेद हुए। तथा प्रत्येक वनस्पतिकायिकके दो भेद है—सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित। ये चौदहो पर्याप्तक, निर्वृत्त्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तकके भेदसे तीन-तीन प्रकारके होते है। इस तरह एकेन्द्रियके ४२ जीवसमास होते है ?

१४६. प्र०—विकलेन्द्रियके नौ भेद कौनसे है ?

उ०—दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियके पर्याप्तक, निर्वृत्त्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तककी अपेक्षासे नौ जीवसमास होते है ?

१४७. प्र०—पञ्चेन्द्रियके सतालीस भेद कौनसे है ?

उ०—तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियके ३४, मनुष्यके नौ, देवोके दो और नारकियोके दो।

१४८. प्र०—तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियके ३४ भेद कौनसे है ?

उ०—कर्मभूमियाके तीस और भोगभूमियाके चार।

१४९. प्र०—कर्मभूमिया तिर्यञ्चके तीस भेद कौनसे है ?

उ०—कर्मभूमियाके तीन भेद है—जलचर, नभचर और थलचर। ये तीन सज्ञी और असज्ञीके भेदसे दो-दो प्रकारके होनेके कारण छै भेद हुए। ये छहो गर्भज भी होते है और नपुसक भी होते है। गर्भजोमे पर्याप्त और निर्वृत्त्यपर्याप्त ये दो भेद होते है और सम्मूर्छनोमे पर्याप्त, निर्वृत्त्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त ये तीन भेद होते है। अत कर्मभूमिया पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके ६ × २ = १२ + (६ × ३) = १८। कुल तीस भेद होते है।

१५०. प्र०—भोगभूमिया तिर्यञ्चके चार भेद कौनसे है ?

उ०—भोगभूमिमे जलचर तिर्यञ्च नही होते। तथा सब गर्भज और सज्ञी ही होते है। अत. थलचर और नभचर और उनके पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तककी अपेक्षा चार भेद हुए।

१५१. प्र०—मनुष्योके नौ भेद कौनसे है ?

उ०—आर्यखण्डके मनुष्य, म्लेच्छ खण्डके मनुष्य, भोगभूमिके मनुष्य और कुभोगभूमिके मनुष्य, इस प्रकार मनुष्यके चार भेद है। इनमेसे आर्यखण्डके मनुष्य पर्याप्तक, निर्वृत्त्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तकके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं और शेष तीन पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तकके भेदसे दो-दो ही प्रकारके होते है।

१५२ प्र०—नारकियोके दो भेद कौनसे है ?

उ०—पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक।

१५३ प्र०—देवोके दो भेद कौनसे है ?

उ०—पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक।

१५४. प्र०—पर्याप्तक किसे कहते है ?

उ०—जिस जीवकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो गई है उसको पर्याप्तक कहते है।

१५५. प्र०—निर्वृत्त्यपर्याप्तक किसे कहते है ?

उ०—जब तक जीवकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण न हुई हो, किन्तु नियमसे पूर्ण होनेवाली हो, तब तक उस जीवको निर्वृत्त्यपर्याप्तक कहते है।

१५६. प्र०—लब्ध्यपर्याप्तक किसे कहते है ?

उ०—जिस जीवकी एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो और श्वासके अट्ठारहवें भागमे ही मरण होनेवाला हो उसको लब्ध्यपर्याप्तक कहते है।

१५७ प्र०—पर्याप्ति किसे कहते है ?

उ०—आहार वर्गणा, भाषा वर्गणा, और मनोवर्गणाके परमाणुओको शरीर आदि रूप परिणमानेकी शक्तिकी पूर्णताको पर्याप्ति कहते है।

१५८ प्र०—पर्याप्तिके कितने भेद है ?

उ०—पर्याप्तिके छै भेद है—आहार पर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मन.पर्याप्ति।

१५९ प्र०—आहार पर्याप्ति किसे कहते है ?

उ०—आहारवर्गणाके परमाणुओको खल और रसभाग रूप परिणमानेकी कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको आहारपर्याप्ति कहते है।

१६०. प्र०—शरीरपर्याप्ति किसे कहते है ?

उ०—जिन परमाणुओको खल रूप परिणमाया था उनको हाड वगैरह कठिन अवयवरूप और जिनको रसरूप परिणमाया था उनको रुधिर आदि रूप परिणमानेकी कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको शरीर पर्याप्ति कहते है।

१६१. प्र०—इन्द्रिय पर्याप्ति किसे कहते है ?

उ०—आहारवर्गणाके परमाणुओको इन्द्रियके आकाररूप परिणमानेमे तथा इन्द्रिय द्वारा विषय ग्रहण करनेमे कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको इन्द्रिय-पर्याप्ति कहते है।

१६२. प्र०—श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति किसे कहते है ?

उ०—आहार वर्गणाके परमाणुओको श्वासोछ्वास रूप परिणमानेमे कारण-भूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते है।

१६३ प्र०—भाषा पर्याप्ति किसे कहते है ?

उ०—भाषावर्गणाके परमाणुओको वचनरूप परिणमानेमे कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको भाषा पर्याप्ति कहते है।

१६४. प्र०—मनःपर्याप्ति किसे कहते है ?

उ०—मनोवर्गणा के परमाणुओको द्रव्य मनरूप परिणमानेमे तथा उसके द्वारा गुण दोषका विचार, बीती बातका स्मरण आदि कार्य करनेमे कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको मन.पर्याप्ति कहते है।

१६५. प्र०—पर्याप्तियोके आरम्भ और पूर्णताका क्या क्रम है ?

उ०—अपने अपने योग्य पर्याप्तियोका आरम्भ तो एक साथ ही होता है किन्तु उनकी पूर्णता क्रमसे होती है। सब पर्याप्तियोके पूर्ण होनेका काल अन्तर्मुहूर्त है और एक-एक पर्याप्तिके पूर्ण होनेका काल भी अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु पहलेसे दूसरेका, दूसरेसे तीसरेका इस तरह छठे तकका कालक्रमसे वडा-वडा अन्तर्मुहूर्त है।

१६६. प्र०—किस जीवके कितनी पर्याप्तियाँ होती है ?

उ०—एकेन्द्रियके भाषा और मनके विना शेष चार पर्याप्तियाँ होती है। दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोके मनके विना शेष पाँच पर्याप्तियाँ होती हे और सज्ञी पञ्चेन्द्रिय के छहो पर्याप्तियाँ होती है।

१६७. प्र०—पर्याप्तकके कितने गुणस्थान हो सकते है ?

उ०—पर्याप्तकके सभी गुणस्थान हो सकते हैं ?

१६८. प्र०—निर्वृत्त्यपर्याप्तकके कितने गुणस्थान होते है—

उ०—पहला, दूसरा, चौथा और छठा मे चार गुणस्थान होते है।

१६९. प्र०—लब्ध्यपर्याप्तकके कितने गुणस्थान होते है ?

उ०—लब्ध्यपर्याप्तकके केवल पहला गुणस्थान होता है।

१७०—लब्ध्यपर्याप्तक जीव एक अन्तर्मुहूर्तमे कितने जन्म धारण करता है ?

उ० छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस।

१७१. प्र०—योनि किसे कहते है ?

उ० —जीवके उत्पत्ति स्थानको योनि कहते हे।

१७२ प्र०—योनिके कितने भेद है ?

उ०—दो, आकार योनि और गुण योनि।

१७३. प्र०—आकार रूप योनिके कितने भेद है ?

उ०—स्त्रीके शरीरमे होनेवाली आकार रूप योनिके तीन भेद है—शखावर्त योनि, कूर्मोन्नत योनि और वशपत्र योनि।

१७४ प्र०—किस योनिमे कौन उत्पन्न होता है ?

उ०—शखावर्तक योनिमे तो गर्भ नही रहता। कूर्मोन्नत योनिमे तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, नारायण आदि उत्पन्न होते है और वशपत्र योनिमे जनसाधारण उत्पन्न होते है।

१७५ प्र०—गुण योनिके कितने भेद है ?

उ०—नौ सचित्त, अचित्त, सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण, शीतोष्ण, सवृत, विवृत, सवृतविवृत ।

१७६ प्र०—सचित्त आदिका क्या स्वरूप है ?

उ०—चेतन सहित पुद्गल स्कन्धको सचित्त कहते है। उससे विपरीतको अचित्त कहते है। जो पुद्गल स्कन्ध सचित्त अचित्त दोनो रूप होते है उन्हे सचित्ताचित्त कहते हैं। शीत स्पर्शसे युक्त पुद्गल स्कन्धको शीत कहते है। उष्ण स्पर्शसे युक्त पुद्गल स्कन्धको उष्ण कहते हैं। जो पुद्गल उभय रूप हो उन्हे शीतोष्ण कहते है। जिस पुद्गल स्कन्धका आकार गुप्त होता है, जिससे उसे देखा नही जा सकता, उसे सवृत कहते है। जिसको देखा जा सकता है उसे विवृत कहते है। और जो दोनो रूप हो उसे सवृतविवृत कहते है।

१७७. प्र०—किस जन्मवालोकी कौन योनि होती है ?

उ०—उपपाद जन्मवालोकी अचित्त, शीत या उष्ण और सवृत योनि होती है। गर्भ जन्मवालोकी सचित्ताचित्त, शीत उष्ण या शीतोष्ण और सवृत योनि होती है। सम्मूर्छन जन्मवालोकी सचित्त अचित्त या सचित्ताचित्त, शीत उष्ण या शीतोष्ण और सवृत अथवा विवृत योनि होती है। इतना विशेष है कि तेजस्कायिक जीवोकी योनि उष्ण ही होती है। तथा एकेन्द्रियोकी योनि सवृत और विकलेन्द्रियोकी विवृत होती है।

१७८. प्र०—योनि और जन्ममे क्या भेद है ?

उ०—योनि आधार है, जन्म आधेय है, क्योकि सचित्त आदि योनियोमे जीव सम्मूर्छन आदि जन्म लेकर उत्पन्न होता है।

१७९ प्र० - विस्तारसे योनिके भेद कितने है ?

उ०—विस्तारसे योनिके भेद चौरासी लाख है—नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक इन छहोमेसे प्रत्येककी सात सात लाख योनियाँ है। प्रत्येक वनस्पतिकी दस लाख योनियाँ है। दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियमेसे प्रत्येककी दो दो लाख योनियाँ है। देव नारकी और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोमेसे प्रत्येककी चार चार लाख योनियाँ है और मनुष्योकी चौदह लाख योनियाँ है।

१८०. प्र०—जन्मके कितने भेद है ?

उ०—तीन - सम्मूर्छन जन्म, गर्भ जन्म और उपपाद जन्म।

१८१ प्र०—सम्मूर्छन जन्म किसे कहते है ?

उ०—तीनों लोकोंमे सर्वत्र माता पिताके सम्बन्धके बिना सब ओरसे पुद्गलोको ग्रहण करके जो शरीरकी रचना हो जाती है उसे सम्मूर्छन जन्म कहते है।

१८२. प्र०—गर्भजन्म किसे कहते हैं ?

उ०—स्त्रीके उदरमे माता पिताके रज वीर्यके मिलनेसे जो शरीरकी रचना होती है उसे गर्भ जन्म कहते है।

१८३ प्र०—उपपाद जन्म किसे कहते हैं ?

उ०—जहां पहुँचते ही एक अन्तर्मुहूर्तमे पूर्ण शरीर बन जाता है ऐसे देव नारियोके जन्मको उपपाद जन्म कहते है।

१८४ प्र०—किन जीवोके कौन सा जन्म होता है ?

उ०—देवनारकियोके उपपाद जन्म ही होता है। जरायुज जन्मके समय (प्राणीके शरीरके ऊपर जालकी तरह जो रुधिर मांसकी खोल लिपटी रहती है उसे जरायु कहते हैं और उससे उत्पन्न होनेवालोंको जरायुज कहते है) अण्डज (अण्डेसे उत्पन्न होनेवाले) और पोत (जन्मके समय जिनके शरीरपर कोई आवरण नहीं होता तथा जो योनिसे निकलते ही चलने फिरने लगते हैं) इन तीन प्रकारके प्राणियोके गर्भ जन्म ही होता है तथा शेष जीवोके सम्मूर्छन जन्म होता है।

१८५ प्र०—लब्ध्यपर्याप्तक जीवोके कौन सा जन्म होता है ?

उ०—लब्ध्यपर्याप्तक जीवोके सम्मूर्छन जन्म होता है।

१८६ प्र०—कौनसे जीवोके कौन लिंग होता है ?

उ०—नारकी और सम्मूर्छन जीवोके नपुंसक लिंग ही होता है। देवोंके पुल्लिंग और स्त्रीलिंग ही होता है, शेष जीवोके तीनोमेसे कोई भी लिंग होता है।

१८७ प्र०—प्राण किसे कहते है ?

उ०—जिनके संयोगसे यह जीव जीवन अवस्थाको और वियोगसे मरण अवस्थाको प्राप्त होता है उन्हे प्राण कहते है।

१८८ प्र०—प्राणके कितने भेद हैं ?

उ०—दो है—द्रव्यप्राण और भावप्राण।

१८९. प्र०—द्रव्यप्राण किसको कहते है ?

उ०--पुद्‍गलद्रव्यसे उत्पन्न हुए द्रव्य इन्द्रिय वगैरहकी प्रवृत्तिको द्रव्यप्राण कहते है।

१९० प्र०--भावप्राण किसे कहते है ?

उ०--आत्माकी जिस शक्तिके निमित्तसे इन्द्रिय वगैरह अपने कार्यमे प्रवृत्त हो, उसे भावप्राण कहते है।

१९१. प्र०--द्रव्यप्राणके कितने भेद है ?

उ०--दस है--मन, वचन, काय, स्पर्शनइन्द्रिय, रसनाइन्द्रिय, घ्राणइन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, क्षेत्रइन्द्रिय, श्वासोच्छ्‍वास और आयु।

१९२ प्र०--किस जीवके कितने प्राण होते है ?

उ०--सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके दसो प्राण होते है। असैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके मनके बिना नौ प्राण होते है। चौइन्द्रियके मन और श्रोत्र इन्द्रियके बिना आठ प्राण होते है। तेइन्द्रियके मन, श्रोत्र और चक्षुइन्द्रियके बिना सात प्राण होते है। दोइन्द्रियके मन, श्रोत्र, चक्षु और घ्राण इन्द्रियके बिना छै प्राण होते है। एकेन्द्रियके स्पर्शनइन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्‍वास और आयु ये चार प्राण होते है। यह पर्याप्त अवस्थाकी अपेक्षा जानना। अपर्याप्त दशामे सैनी और असैनी पञ्चेन्द्रियके सात प्राण ही होते है, क्योकि श्वासोच्छ्‍वास, वचनबल और मनोबल ये तीन प्राण पर्याप्त दशामे ही होते है। चौइन्द्रियके श्रोत्रके बिना छै, तेइन्द्रियके चक्षुके बिना पॉच, दो इन्द्रियके घ्राणके बिना चार और एकेन्द्रिय अपर्याप्तके रसनाके बिना तीन ही प्राण होते है।

१९३. प्र०--पर्याप्ति और प्राणमे क्या भेद है ?

उ०--पर्याप्ति कारण है, प्राण कार्य है।

१९४ प्र०--सज्ञा किसे कहते है ?

उ०--वांछा (चाह) को सज्ञा कहते है।

१९५ प्र०--संज्ञाके कितने भेद है ?

उ०--चार है--आहार, भय, मैथुन और परिग्रह।

१९६ प्र०--उपयोग किसे कहते हैं ?

उ०--जीवके लक्षणरूप परिणामको, जो चैतन्यके होनेपर ही होता है, उपयोग कहते है।

१९७ प्र०--उपयोगके कितने भेद है ?

उ०--दो है--साकार उपयोग और अनाकार उपयोग।

---

१९१ गो० जी०, गा० १३०।

१९८ प्र०—साकार उपयोगके कितने भेद है ?

उ०—आठ हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधि अथवा विभगज्ञान।

१९९ प्र०—अनाकार उपयोगके कितने भेद हैं ?

उ०—चार हैं—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

•

६

२०० प्र०—मार्गणा किसको कहते है ?

उ०—जिनमे अथवा जिनके द्वारा जीवोको खोजा जाता है उनका नाम मार्गणा है।

२०१ प्र०—मार्गणाके कितने भेद है ?

उ०—चौदह है—गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, सयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, सज्ञित्व और आहार।

२०२ प्र०—गति किसको कहते है ?

उ०—गतिनामा नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई जीवकी पर्याय विशेषको गति कहते है।

२०३ प्र०—गतिके कितने भेद है ?

उ०—चार है—नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति।

२०४ प्र०—किस गतिमे कितने गुणस्थान होते है ?

उ०—देवगति और नरकगतिमे आदिके चार गुणस्थान होते है, तिर्यञ्च-गतिमे आदिके पाँच गुणस्थान होते है, और मनुष्यगतिमे चौदह गुणस्थान होते है।

२०५ प्र०—इन्द्रिय किसको कहते है ?

उ०—आत्माके चिह्न विशेषको इन्द्रिय कहते है।

२०६. प्र०—इन्द्रियके कितने भेद है ?

उ०—दो है—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय।

---

१९९. गो० जी० गा० १४१।

२०७. प्र०—द्रव्येन्द्रिय किसको कहते है ?

उ०—निर्वृत्ति और उपकरणको द्रव्येन्द्रिय कहते है ।

२०८ प्र०—निर्वृत्ति किसको कहते है ?

उ०—कर्मके द्वारा होनेवाली रचना विशेषको निर्वृत्ति कहते है ।

२०९ प्र०—निर्वृत्तिके कितने भेद है ?

उ०—दो है —आभ्यन्तर निर्वृत्ति और बाह्य निर्वृत्ति ।

२१० प्र०—आभ्यन्तर निर्वृत्ति किसे कहते है ?

उ०—आत्माके विशुद्ध प्रदेशोकी इन्द्रियोके आकार रचना होनेको आभ्यन्तर निर्वृत्ति कहते है ।

२११ प्र०—बाह्य निर्वृत्ति किसको कहते है ?

उ०—पुद्‌गलोकी इन्द्रियके आकार रचना होनेको बाह्य निर्वृत्ति कहते है ।

२१२ प्र०—उपकरण किसको कहते है ?

उ०—निर्वृत्तिका उपकार करनेवाले पुद्‌गलोको उपकरण कहते है ।

२१३ प्र०—उपकरण के कितने भेद है ?

उ०—दो है—आभ्यन्तर और वाह्य ।

२१४ प्र०—आभ्यन्तर उपकरण किसको कहते है ?

उ०—चक्षु इन्द्रियमे काले सफेद मण्डलकी तरह सब इन्द्रियोमे जो निर्वृत्तिका उपकार करता है उसको आभ्यन्तर उपकरण कहते है ।

२१५. प्र०—बाह्य उपकरण किसको कहते हैं ?

उ०—चक्षुमे पलकोकी तरह सब इन्द्रियोमे जो निर्वृत्तिका उपकार करता है उसको बाह्य उपकरण कहते है ।

२१६ प्र०—भावेन्द्रिय किसको कहते है ?

उ०—लब्धि और उपयोगको भावेन्द्रिय कहते है ।

२१७ प्र०—लब्धि किसको कहते है ?

उ०—ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम विशेषको लब्धि कहते है ।

२१८ प्र०—उपयोग किसको कहते है ?

उ०—लब्धिके निमित्तसे आत्माका जो परिणमन होता है उसको उपयोग कहते है ।

२१९. प्र०—द्रव्येन्द्रियके कितने भेद है ?

उ०--पाँच है--स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र।

२२०. प्र०—स्पर्शन इन्द्रिय किसको कहते है ?

उ०--जिसके द्वारा स्पर्शका ज्ञान हो उसे स्पर्शन इन्द्रिय कहते है।

२२१ प्र०—रसना इन्द्रिय किसे कहते ह ?

उ०--जिसके द्वारा रसका ज्ञान हो उसे रसना इन्द्रिय कहते है।

२२२. प्र०—घ्राण इन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उ०--जिसके द्वारा गधका ज्ञान हो उसे घ्राण इन्द्रिय कहते है।

२२३ प्र०—चक्षु इन्द्रिय किसको कहते हें ?

उ०--जिसके द्वारा रूपका ज्ञान हो उसे चक्षु इन्द्रिय कहते है।

२२४ प्र०—श्रोत्र इन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उ०--जिसके द्वारा शब्दका ज्ञान हो उसे श्रोत्र इन्द्रिय कहते हैं।

२२५ प्र०—किस इन्द्रियका कैसा आकार होता हे ?

उ०—श्रोत्र इन्द्रियका आकार जौ की नालीके समान है। चक्षुका मसूरके समान, रसनाका आधे चन्द्रमा या खुर्पेके समान, घ्राणका कदम्बके फूलके समान आकार है। और स्पर्शन इन्द्रिय अनेक आकारवाली है।

२२६. प्र०—किन जीवोके कितनी इन्द्रियाँ होती हैं ?

उ०—पृथिवीकायिक, जलकायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक इन एकेन्द्रिय जीवोके एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती हे। लट आदि दोइन्द्रिय जीवोके स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रिया होती हे। चीटी आदि तेइन्द्रिय जीवोके स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ होती है। भौरा आदि चौइन्द्रिय जीवोके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रियाँ होती है। साँप, घोडा, मनुष्य आदि पञ्चेन्द्रिय जीवोके पाचो इन्द्रियाँ होती हैं।

२२७ प्र० - एकेन्द्रिय आदिके कितने गुणस्थान होते हैं ?

उ०--एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है। सज्ञी पञ्चेन्द्रियके चौदह गुणस्थान होते है।

२२८ प्र०—काय किसको कहते है ?

उ०—त्रस स्थावर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई जीवकी त्रस स्थावर पर्यायको काय कहते हैं।

२२९ प्र०—त्रस किसको कहते है ?

उ०—त्रस नामकर्मके उदयसे दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियोमे जन्म लेनेवाले जीवोको त्रस कहते है।

२३० प्र०—स्थावर किसको कहते है ?

उ०—स्थावर नामकर्मके उदयसे पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति मे जन्म लेनेवाले जीवोको स्थावर कहते है। इसीसे स्थावर कायके पॉच भेद है—पृथिवीकायिक, जलकायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक।

२३१ प्र०—पृथिवीकायिक किसे कहते है ?

उ०—पृथिवीरूप शरीरको पृथिवीकाय कहते है। वह जिनके पाया जाये उन जीवोको पृथिवीकायिक कहते है। अथवा जिन जीवोके पृथिवीकाय नामकर्मका उदय है उन्हे पृथिवीकायिक कहते है। इसी तरह जलकायिक आदि भी जानना।

२३२ प्र०—बादर किसको कहते है ?

उ०—जो अन्य पदार्थसे रुक जाय वा दूसरे पदार्थोको रोके ऐसे स्थूल शरीरके धारी जीवोको बादर कहते है।

२३३ प्र०—सूक्ष्म किसको कहते है ?

उ०—जो न किसीसे रुके और न दूसरोको रोके, ऐसे सूक्ष्म शरीरके धारी जीवोको सूक्ष्म कहते हैं।

२३४ प्र०—वनस्पतिके कितने भेद हैं ?

उ०—दो हैं—प्रत्येक और साधारण।

२३५ प्र०—प्रत्येक वनस्पति किसको कहते हैं ?

उ०—जिसमे एक जीवका एक शरीर होता है उसे प्रत्येक वनस्पति कहते है।

२३६. प्र०—साधारण वनस्पति किसको कहते हैं ?

उ०—जिसमे बहुतसे जीवोका एक ही शरीर समान रूपसे होता है उसे साधारण वनस्पति कहते है।

२३७ प्र०—प्रत्येक वनस्पतिके कितने भेद है ?

उ०—दो है—सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित।

२३८ प्र०—सप्रतिष्ठित प्रत्येक किसको कहते हैं ?

उ०—जिस प्रत्येक वनस्पतिके आश्रय अनेक साधारण वनस्पति हो उसे सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते है।

२३९. प्र०—अप्रतिष्ठित प्रत्येक किसको कहते हैं ?

उ०—जिस प्रत्येक वनस्पतिके आश्रय कोई भी साधारण वनस्पति न हो उसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते है।

२४०. प्र०—सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठितकी क्या पहचान है ?

उ०—जिस प्रत्येक वनस्पतिमे सिरा जैसे ककडीको लकीर, सधि जैसे नारगीकी फाके, पर्व जैसे गन्नेकी गाठ, गूढ हो, तथा जिसको तोडनेपर खटसे समान दो टुकडे हो जायें वह सप्रतिष्ठित प्रत्येक है, और जिसकी सिरायें वगैरह स्पष्ट हो गई हो और जो तोडने पर बराबर न टूटे वह अप्रतिष्ठित प्रत्येक है। इसी प्रकार जिस वनस्पतिकी छाल मोटी हो वह सप्रतिष्ठित है और जिसकी छाल पतली हो वह अप्रतिष्ठित है।

२४१. प्र०—साधारण वनस्पति सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिके ही रहती है या अन्यत्र भी रहती है ?

उ०—पृथिवी, जल, तेज और वायुकायके शरीर, केवलीका शरीर, आहारक शरीर, देवोका शरीर, और नारकियोका शरीर इन शरीरोमे साधारण वनस्पतिका निवास नही है, शेष सव जीवोके शरीरोमे साधारण वनस्पतिका निवास रहता है।

२४२ प्र०—साधारण वनस्पतिके कितने भेद है ?

उ०—दो है—नित्य निगोद और इतर निगोद।

२४३ प्र०—नित्य निगोद किसको कहते हैं ?

उ०—जो अनादिकालसे निगोद पर्यायको ही धारण किये हुए है और जिन्होने कभी भी त्रस पर्याय प्राप्त नही की उन जीवोको नित्यनिगोद कहते है।

२४४ प्र०—इतर निगोद किसको कहते हैं ?

उ०—जो वीचमे अन्य पर्याय धारण करके निगोदमे जाते हैं उन्हे इतर निगोद कहते है।

२४५ प्र०—बादर और सूक्ष्म जीव कौन-कौनसे हैं ?

उ०—पृथिवीकायिक, जलकायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक, नित्यनिगोद और इतरनिगोद ये छै बादर भी होते है और सूक्ष्म भी होते है। बाकीके सव जीव बादर ही होते है, सूक्ष्म नही होते।

२४६ प्र०—स्थावर और त्रसोके कितने गुणस्थान है ?

उ०—स्थावर जीवोके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है, त्रस जीवोके चौदहो गुणस्थान हो सकते है।

२४७. प्र०—योग किसको कहते है ?

उ०—पुद्गल विपाकी शरीर और अगोपाग नामकर्मके उदयसे मनोवर्गणा, वचनवर्गणा और कायवर्गणाके अवलम्बनसे युक्त आत्माकी जो शक्ति पुद्गल-स्कन्धोको कर्म और नोकर्मरूप परिणमाने मे समर्थ है उसे भावयोग कहते है। और उस शक्तिके धारी आत्माके प्रदेशोमे जो हलन-चलन होता है वह द्रव्ययोग है।

२४८ प्र०—योग के कितने भेद हैं ?

उ०—पन्द्रह है—चार मनोयोग (सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभय-मनोयोग, अनुभय मनोयोग), चार वचनयोग (सत्यवचनयोग, असत्य वचनयोग, उभय वचनयोग, अनुभय वचनयोग) और सातकाययोग (औदारिक काययोग, औदारिक मिश्रकाययोग, वैक्रियिक काययोग, वैक्रियिक मिश्रकाययोग, आहारक काययोग, आहारक मिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग।

२४९. प्र०—सत्य मनोयोग वगैरह का क्या स्वरूप है ?

उ०—घटको घट जानना या कहना सत्य है, घटको पट जानना या कहना असत्य है, कमडलुको घट कहना या जानना उभय है क्योकि कमडलु भी घटकी तरह पानी भरनेके काम आता है इसीलिये सत्य है और कमण्डलुका आकार घट जैसा नही है इसलिये असत्य है, और सत्य असत्यके निर्णयसे रहित पदार्थ अनुभय है। सत्य, असत्य, उभय और अनुभय रूप पदार्थोमे जो मन और वचनकी प्रवृत्ति होती है अर्थात् चार प्रकारके पदार्थोको जानने या कहनेके लिये जीव जो प्रयत्न करता है सो सत्य आदि पदार्थोके सम्वन्धसे चार प्रकार का मनोयोग और चार प्रकारका वचनयोग होता है।

२५० प्र० मनोयोग किन गुणस्थानोमे होता है।

उ०—असत्य मनोयोग और उभय मनोयोग वारहवे गुणस्थान तक होते है और सत्य मनोयोग तथा अनुभय मनोयोग सयोगकेवली नामक तेरहवे गुणस्थान तक होते है।

२५१ प्र०—केवलीके मनोयोग कैसे सम्भव है ?

उ०—इन्द्रियज्ञानसे रहित होनेके कारण सयोगकेवलीके मुख्य रूपसे तो मनोयोग नही है किन्तु अगोपाग नामकर्मका उदय होनेसे हृदयमे स्थित द्रव्य-मनके लिये मनोवर्गणाके स्कन्ध वरावर आते रहते है अत मनोयोग उपचार मात्रसे है।

२५२. प्र०—वचनयोग किन गुणस्थानोमे होता है ?

उ०—असत्य वचनयोग और उभय वचनयोग बारहवें गुणस्थान तक होते है। और सत्य वचनयोग तथा अनुभय वचनयोग तेरहवे गुणस्थान तक होते ह।

२५३. प्र०—औदारिक काययोग किसे कहते हैं ?

उ०—मनुष्य और तिर्यञ्चोके स्थूल शरीरको औदारिक कहते है। और उसके निमित्तसे होनेवाले योगको औदारिक काय योग कहते है।

२५४. प्र०—औदारिक मिश्रकाययोग किसको कहते हैं ?

उ०—औदारिक शरीर जब तक पूर्ण नही होता, तब तक मिश्र कहलाता है। उसके द्वारा होनेवाले योगको औदारिक मिश्रकाय योग कहते हैं।

२५५ प्र०—वैक्रियिक काययोग किसको कहते हैं ?

उ०—अनेक गुण और ऋद्धियोंसे युक्त शरीरको वैक्रियिक शरीर कहते है। और उसके द्वारा होनेवाले योगको वैक्रियिक योग कहते हे ?

२५६. प्र०—वैक्रियिक मिश्रकाय योग किसको कहते हैं ?

उ०—वैक्रियिक शरीर जब तक पूर्ण नही होता, तब तक मिश्र कहलाता है और उसके द्वारा जो योग होता हे उसे वैक्रियिक मिश्रकाय योग कहते है।

२५७. प्र० आहारक काययोग किसको कहते हैं ?

उ०—छठवे गुणस्थानवर्ती मुनि अपनेको सन्देह होनेपर जिस शरीरके द्वारा केवलीके पास जाकर सूक्ष्म अर्थोको ग्रहण करता हे उसे आहारक शरीर कहते है। और उसके द्वारा होनेवाले योगको आहारक काययोग कहते है।

२५८. प्र०—आहारक मिश्र काययोग किसको कहते हैं ?

उ०—जब तक आहारक शरीर पूर्ण नही होता, अर्थात् आहार वर्गणारूप पुद्गल स्कन्धोको आहारक शरीर रूप परिणमानेमे समर्थ नही होता, तब तक उसको आहारक मिश्र कहते है। और उसके द्वारा जो योग होता है उसे आहारक मिश्र काययोग कहते है।

२५९ प्र०—कार्मण काययोग किसको कहते हैं ?

उ०—ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारके कर्मस्कन्धको ही कार्मण शरीर कहते है। और उसके द्वारा होनेवाले योगको कार्मण काययोग कहते है।

२६० प्र०—औदारिक और औदारिक मिश्र काययोग किसके होते हैं ?

उ०—तिर्यञ्च और मनुष्योके होते है।

२६१. प्र०—वैक्रियिक और वैक्रियिक मिश्र काययोग किसके होते हैं ?

उ०—देवो और नारकियोके होते है।

२६२ प्र०—तिर्यञ्च और मनुष्योके भी वैक्रियिक शरीर सुना जाता है सो कैसे ?

उ०—औदारिक शरीर दो प्रकारका होता है-विक्रियात्मक और अविक्रियात्मक। उनमेसे जो विक्रियात्मक औदारिक शरीर है वही मनुष्यो और तिर्यञ्चोके वैक्रियिक रूपसे कहा जाता है। उसका यहाँपर ग्रहण नही है।

२६३ प्र०—आहारक और आहारक मिश्र काययोग किसके होते है ?

उ०—ऋद्धिधारी छठे गुणस्थानवर्ती मुनियोके होते है।

२६४. प्र०—कार्मण काययोग किसके होता है ?

उ०—विग्रह गतिमे स्थित चारो गतियोके जीवोके तथा प्रतर और लोकपूरण समुद्घातको प्राप्त केवलीके कार्मण काययोग होता है।

२६५. प्र०—विग्रह गति किसे कहते हैं ?

उ०—विग्रह शरीरको कहते है। नया शरीर धारण करनेके लिये जो गति होती है उसे विग्रह गति कहते है। अथवा 'विग्रह' अर्थात् नोकर्म पुद्गलोका ग्रहण करनेके निरोधके साथ जो गति होती है उसे विग्रह गति कहते हैं। अथवा 'विग्रह' अर्थात् मोडको लिये हुए जो गति होती है उसे विग्रह गति कहते है।

२६६. प्र०—विग्रह गतिके कितने भेद है ?

उ०—चार है—इषुगति या ऋजुगति, पाणिमुक्तागति, लागलिका गति और गोमूत्रिका गति।

२६७ प्र०—इषुगति किसको कहते है ?

उ०—धनुषसे छूटे हुए वाणके समान मोडा रहित गतिको इषुगति कहते हैं। इस गति मे एक समय लगता है।

२६८ प्र०—पाणिमुक्ता गति किसको कहते है ?

उ०—जैसे हाथसे तिरछे फेंके गये द्रव्यकी एक मोडेवाली गति होती है उसी प्रकार ससारी जीवोकी एक मोडेवाली गतिको पाणिमुक्ता गति कहते है। यह गति दो समय वाली होती है।

२६९. प्र०—लागलिका गति किसको कहते है ?

उ०—जैसे हलमे दो मोडे होते है वैसे ही दो मोडेवाली गतिको लागलिका गति कहते हे। यह गति तीन समयवाली होती है।

२७० प्र०—गोमूत्रिका गति किसको कहते है ?

उ०—जैसे गायका चलते हुए मूत्र करना अनेक मोडोवाला होता है उसी प्रकार तीन मोडेवाली गतिको गोमूत्रिका कहते है। यह गति चार समयवाली होती है।

२७१. प्र०—चार मोड़ेवाली गति क्यों नही होती ?

उ०—लोकके मध्यसे लेकर ऊपर, नीचे और तिरछे क्रमसे विद्यमान आकाश के प्रदेशोकी पक्तिको श्रेणि कहते है। इस श्रेणिके अनुसार ही जीवोका गमन होता है। श्रेणिका उल्लघन करके गमन नही होता। इसलिये ऐसा कोई स्थान नही है जहॉपर पहुँचनेके लिए चार मोडे लेने पडे।

२७२. प्र०—समुद्घात किसे कहते है ?

उ०—मूल शरीरको विना छोडे जीवके प्रदेशोके बाहर निकलनेको समुद्घात कहते है।

२७३. प्र०—समुद्घातके कितने भेद है ?

उ०—सात भेद है – वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, विक्रिया समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात, तैजस समुद्घात, आहारक समुद्घात और केवली समुद्घात।

२७४. प्र०—वेदना समुद्घात वगैरहका क्या स्वरूप है ?

उ०—बहुत पीड़ाके निमित्तसे आत्मप्रदेशोके बाहर निकलनेको वेदना समुद्घात कहते है। क्रोध आदि कषायके निमित्तसे आत्मप्रदेशोके बाहर निकलनेको कषाय समुद्घात कहते है। विक्रियाके निमित्तसे आत्मप्रदेशोके वाहर निकलनेको विक्रिया समुद्घात कहते है। मरण होनेसे पहले नवीन पर्याय धारण करनेके क्षेत्र पर्यन्त प्रदेशोके बाहर निकलनेको मारणान्तिक समुद्घात कहते है। अशुभ या शुभ तैजसके साथ आत्मप्रदेशोके बाहर निकलनेको तैजस समुद्घात कहते है। प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनिके आहारक शरीरके साथ आत्मप्रदेशोके बाहर निकलनेको आहारक समुद्घात कहते है। और केवलज्ञानीके समुद्घातको केवलि समुद्घात कहते है।

२७५ प्र०—केवली समुद्घात क्यो करते है ?

उ०—आयु कर्मकी स्थितिसे अन्य तीन कर्मोकी स्थिति अधिक होनेपर उनकी स्थिति भी आयु कर्मके समान करनेके लिए केवली समुद्घात करते हैं।

२७६. प्र०—सभी केवली समुद्घात करते है क्या ?

उ०—यतिवृषभ आचार्यके मतसे सभी केवली समुद्घात करके ही मुक्त होते है। अन्य आचार्यके मतसे कुछ केवली समुद्घात करते हे और कुछ नही करते।

२७७. प्र०—केवली समुद्घातमे कितना समय लगता है।

उ०—केवली समुद्घातमे आठ समय लगते है—पहले समयमे आत्मप्रदेशोको फैलाकर दण्डके आकार करते है। दूसरे समयमे कपाटके आकार करते है। तीसरे समयमे प्रतररूप करते है और चौथे समयमे आत्मप्रदेशोसे लोकको पूर देते है। पाँचवें समयसे लोकपूरणसे प्रतररूप, छठेमे प्रतरसे कपाटरूप, सातवेंमे कपाटसे दण्डरूप और आठवेमे फिरसे शरीरमे प्रविष्ट हो जाते हे।

२७८ प्र०—एक कालमे योग कितने होते है ?

उ०—एक कालमे एक जीवके एक ही योग होता है।

२७९ प्र०—वेद किसको कहते है ?

उ०—चारित्र मोहनीयके भेद पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुसकवेदरूप नोकषायके उदयसे उत्पन्न हुई मैथुनकी अभिलाषाको भाववेद कहते है। और नामकर्मके उदयसे शरीरमे प्रकट होनेवाले चिह्न विशेषको द्रव्यवेद कहते है।

२८०. प्र०—वेदके कितने भेद है ?

उ०—तीन है—पुरुषवेद, स्त्रीवेद ओर नपुसकवेद।

२८१. प्र०—भाववेद और द्रव्यवेद समान ही होते है या असमान भी ?

उ०—देव, नारकी, भोगभूमि या तिर्यञ्च और मनुष्योमे जैसा द्रव्यवेद होता है वैसा ही भाववेद भी होता है। किन्तु कर्मभूमिया मनुष्य और तिर्यञ्चोमे किन्ही के तो जैसा द्रव्यवेद होता है वैसा ही भाववेद होता है और किन्हींके द्रव्यवेद दूसरा होता है और भाववेद दूसरा होता है।

२८२ प्र०—भाववेद किस गुणस्थान तक होता है ?

उ०—नौवें गुणस्थानके सवेद भाग पर्यन्त होता है। इसके आगे जीव वेद-रहित होते है।

२८३ प्र०—किन जीवोमे कौनसा वेद होता है ?

उ०—नारकी नपुसकवेदी ही होते है। देवोमे स्त्री और पुरुष दो ही वेद होते है। मनुष्य और तिर्यञ्चोमे तीनो वेद पाये जाते है।

२८४ प्र०—कषाय किसको कहते है ?

उ०—जो जीवके कर्मरूपी खेतका कर्षण करती है उसे कषाय कहते है।

२८५. प्र०—कषायके कितने भेद है ?

उ०—चार है– क्रोध, मान, माया, लोभ ।

२८६ प्र०—कषाय कितने गुणस्थान तक रहती है ?

उ०—क्रोध, मान और माया नौवे गुणस्थान तक होते है और लोभ कषाय दसवे गुणस्थान तक रहती है । उसके बादके गुणस्थानवाले जीव अकषाय होते है।

२८७. प्र०—ज्ञान किसको कहते है ?

उ०—जिसके द्वारा जीव त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य, उनके गुण और उनकी पर्यायोको प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे जानते है उसे ज्ञान कहते है ।

२८८. प्र०—ज्ञानमार्गणाके कितने भेद है ?

उ०—आठ है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुवधिज्ञान ।

२८९ प्र०—मतिज्ञान किसको कहते है ?

उ०—पॉच इन्द्रियो और मनकी सहायतासे जो पदार्थका ग्रहण होता है उसे मतिज्ञान कहते है ।

२९०. प्र०—मतिज्ञानके कितने भेद है ?

उ० चार है—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ।

२९१ प्र० – अवग्रह किसको कहते है ?

उ०—इन्द्रिय और पदार्थका सम्बन्ध होनेके अनन्तर समयमे जो आद्य ग्रहण होता है उसे अवग्रह कहते है । जैसे चक्षुसे सफेद रूपका जानना अवग्रह है ।

२९२. प्र०—ईहा किसको कहते है ?

उ०—अवग्रहसे जाने हुए पदार्थके विशेषको जाननेके लिए अभिलाषा रूप जो ज्ञान होता है उसे ईहा कहते है । जैसे यह सफेद रूपवाली वस्तु क्या है ? यह तो बगुलोकी पक्ति मालूम होती है ।

२९३ प्र०—अवाय किसको कहते है ?

उ०—ईहाके द्वारा जाने गये पदार्थके निश्चयात्मक ज्ञानको अवाय कहते है । जैसे, यह बगुलोकी पक्ति ही है ।

२९४ प्र०—धारणा किसको कहते है ?

उ०—कालान्तरमे भी विस्मरण न होने रूप सस्कारके जनक ज्ञानको धारणा कहते है ।

२९५ प्र०—मतिज्ञानके विस्तारसे कितने भेद है ?

उ०—तीन सौ छत्तीस—मतिज्ञानके विषयभूत पदार्थ दो प्रकारके है—एक व्यजनरूप या अव्यक्त और एक अर्थरूप या व्यक्त। पदार्थके अवग्रहादि चारो ज्ञान होते है और व्यक्त पदार्थका केवल अवग्रह ही होता है। व्यक्त पदार्थके अवग्रहको अर्थावग्रह कहते है और अव्यक्त पदार्थके अवग्रहको व्यजनावग्रह कहते हैं। व्यजनावग्रह चक्षु और मनके सिवाय शेप चार इन्द्रियोसे होता है इसलिये उसके चार भेद हुए। और अर्थके अवग्रह आदि चारो ज्ञान होते है तथा प्रत्येक ज्ञान पाँचो इन्द्रियो और छठे मनसे होता है इसलिये चौबीस भेद हुए। इनमे व्यजनावग्रहके चार भेद मिलानेसे अट्ठाईस भेद हुए। तथा अर्थरूप और व्यजनरूप विषयके वारह भेद है—वहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिसृत, अनुक्त और ध्रुव तथा इनके प्रतिपक्षी - एक, एकविध, अक्षिप्र, निसृत, उक्त और अध्रुव। इन वारहो प्रकारके विपयोका अट्ठाईस अट्ठाईस प्रकारका ज्ञान होनेसे मतिज्ञानके तीन सौ छत्तीस भेद है।

२९६ प्र०—बहु, बहुविध आदिका क्या स्वरूप है ?

उ०—जहाँ बहुत व्यक्तियोका मतिज्ञान हो, उसके विषयको बहु कहते हैं। जहाँ बहुत जातियोका मतिज्ञान हो उसके विपयको वहुविध कहते है। जैसे बहुत सी गायोको बहुज्ञान कहते है और काली पीली आदि बहुत प्रकारकी गायोके ज्ञानको वहुविध ज्ञान कहते है। एक व्यक्तिको एक कहते है जैसे एक गौ। एक जातिको एकविध कहते है जैसे एक प्रकारकी अनेक गाये। क्षिप्र शीघ्रको कहते है, जैसे शीघ्र गिरती हुई जलधारा। अक्षिप्र मन्दगतिसे चलती हुई वस्तुको कहते है जैसे मन्दगतिसे जाता हुआ घोडा। अनिसृत ढके हुए को कहते है जैसे जलमे डूबा हुआ हाथी। निसृत प्रकटको कहते है जैसे जलसे बाहर खडा हुआ हाथी। अनुक्त विना कहे हुए को कहते है जैसे विना ही कुछ कहे किसीके अभिप्रायको जान लेना अनुक्तज्ञान है। उक्त कहे हुए को कहते है जैसे किसीने कहा यह घट है। ध्रुव स्थिरको कहते हैं जैसे पर्वत। अध्रुव अस्थिरको कहते है जैसे क्षण स्थायी बिजली।

२९७ प्र०—श्रुतज्ञान किसको कहते है ?

उ०—मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थका अवलम्बन लेकर उसी पदार्थसे सम्बद्ध अन्य पदार्थके ज्ञानको श्रुतज्ञान कहते है।

२९८. प्र०—श्रुतज्ञान के भेद कितने है ?

उ०—श्रुतज्ञानके दो भेद है—एक अक्षरात्मक और दूसरा अनक्षरात्मक।

२९९ प्र०—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—जो श्रुतज्ञान अक्षरके निमित्तसे उत्पन्न नहीं होता किन्तु लिंग (चिह्न) के निमित्तसे उत्पन्न होता है उसे अनक्षरात्मक अथवा लिंगज श्रुतज्ञान कहते है। जैसे शीतलवायुका स्पर्श होनेपर शीतलवायुका जानना तो मतिज्ञान है और उसके पश्चात् ही वातप्रकृतिवालेको यह शीतलवायु हानिकर है ऐसा जानना अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

३०० प्र०—अक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसको कहते है ?

उ०—अक्षररूप शब्दके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाले श्रुतज्ञानको अक्षरात्मक श्रुतज्ञान कहते है। जैसे, जीव है ऐसा कहने पर श्रोत्रेन्द्रियके द्वारा जो शब्दका ज्ञान हुआ वह तो मतिज्ञान है, और उस ज्ञानके पश्चात् जीव नामक पदार्थ है ऐसा जो ज्ञान हुआ वह अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

३०१. प्र०—अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके कितने भेद है ?

उ०—दो भेद है—एक अगप्रविष्ट और दूसरा अगबाह्य।

३०२. प्र०—अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान किसको कहते हे ?

उ०—भगवान् तीर्थङ्करने केवलज्ञानके द्वारा सब पदार्थोको जानकर दिव्य ध्वनिके द्वारा उपदेश दिया। उनके साक्षात् शिष्य गणधरने उस उपदेशको अपनी स्मृतिमे रखकर बारह अगोमे सकलित किया। यह अगप्रविष्ट श्रुतज्ञान है।

३०३. प्र०—अंगबाह्य श्रुतज्ञान किसको कहते है ?

उ०—आचार्योने अल्पबुद्धि शिष्योपर दया करके उन अग ग्रन्थोके आधार पर जो ग्रन्थ रचे वे अगबाह्य कहलाते है।

३०४. प्र०—अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञानके भेद कितने है ?

उ०—बारह है—आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकाध्ययन,, अन्तकृद्दश, अनुत्तरोपपादिकदश, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र, दृष्टिवाद।

३०५. प्र०—बारहवें दृष्टिवाद अंगके कितने भेद है ?

उ०—पॉच भेद हैं—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्व और चूलिका।

३०६. प्र०—पूर्वके कितने भेद है ?

३०४—अग प्रविष्ट श्रुतज्ञानके बारह भेदोमे किन-किन विषयोका वर्णन है यह जानने के लिए देखो—जयधवला, १ भाग पृ० १२२–१३२।

उ०--चौदह भेद है--उत्पादपूर्व, अग्रायणी, वीर्यप्रवाद, अस्ति नास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्यख्यानप्रवाद, विद्यानुवाद, कल्याणप्रवाद, प्राणावाय, क्रियाविशाल और लोकविन्दुसार।

३०७. प्र०—अवधिज्ञान किसको कहते है ?

उ०—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादा लिये जो रूपी पदार्थोको स्पष्ट जाने।

३०८ प्र०—अवधिज्ञानके कितने भेद है ?

उ०--दो भेद हैं--भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय।

३०९. प्र०—भवप्रत्यय अवधिज्ञान किसको कहते है ?

उ०—भवके निमित्तसे होनेवाले अवधिज्ञानको भवप्रत्यय कहते है। अर्थात् जो जीव नारकी या देवकी पर्याय धारण करता है, उसके अवधिज्ञान अवश्य होता है इसलिये उसे भवप्रत्यय कहते है।

३१० प्र०—भवप्रत्यय अवधि किसके होता है ?

उ०--भवप्रत्यय अवधिज्ञान देवो, नारकियो और तीर्थङ्करोके होता है।

३११. प्र०—गुणप्रत्यय अवधि किसको कहते है ?

उ०—गुण अर्थात् व्रत नियम वगैरहके निमित्तसे होनेवाले अवधिज्ञानको गुण प्रत्यय कहते हैं।

३१२ प्र०—गुणप्रत्यय अवधि किसके होता है ?

उ०—मनुष्य और तिर्यञ्चो के।

३१३ प्र०—दूसरे प्रकारसे अवधिज्ञानके कितने भेद है ?

उ०—तीन भेद है—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। इनमेसे देशावधि तो भवप्रत्यय भी होता है और गुणप्रत्यय भी। शेष दोनो गुणप्रत्यय ही होते हैं।

३१४ प्र०—तीनो अवधिज्ञान किसके होते है ?

उ०—जघन्य देशावधि तो मनुष्य और तिर्यञ्चोके ही होता है, देव नारकियोके नही होता। उत्कृष्ट देशावधि सयमी मनुष्योके ही होता है। और परमावधि तथा सर्वावधि चरमशरीरी महाव्रती मनुष्योके ही होते है।

३१५. प्र०—मनःपर्यय ज्ञान किसको कहते हैं ?

उ०—दूसरेके मनमे स्थित रूपी पदार्थको जो स्पष्ट जाने उसे मन पर्यय ज्ञान कहते है।

३१६. प्र०—मन.पर्यय ज्ञानके कितने भेद है ?

उ०—दो भेद है – एक ऋजुमति और दूसरा विपुलमति ।

३१७ प्र०—ऋजुमति मन.पर्यय किसको कहते है ?

उ०—दूसरेके मनमे सरल रूपसे स्थित रूपी पदार्थको जो स्पष्ट जाने ।

३१८ प्र०—विपुलमति मन.पर्यय किसको कहते हैं ?

उ०—दूसरेके मनमे सरल अथवा जटिल रूपसे स्थित रूपी पदार्थको जो स्पष्ट जाने ।

३१९. प्र० --ऋजुमति और विपुलमतिमे क्या अन्तर है ?

उ०—ऋजुमति मनःपर्यय अपने और अन्य जीवोके स्पर्शनादि इन्द्रिय और मन वचन काययोगकी अपेक्षासे उत्पन्न होता है। किन्तु विपुलमति मन पर्यय अवधिज्ञानकी तरह इनकी अपेक्षाके विना ही उत्पन्न होता है। तथा ऋजुमति विशुद्ध परिणामोकी घटवारी होनेसे प्रतिपाती है। किन्तु विपुलमति अप्रतिपाती हे, केवलज्ञान उत्पन्न होने तक वना रहता है।

३२० प्र०—मनःपर्यय ज्ञान किसके होता है ?

उ०—प्रमत्त आदि सात गुणस्थानोमे ऋद्धिधारी और वर्धमान चरित्रवाले महामुनियोके ही होता है।

३२१ प्र०—सकल प्रत्यक्ष किसको कहते है ?

उ० —केवलज्ञान को।

३२२. प्र०—केवलज्ञान किसको कहते है ?

उ०—प्रतिपक्षी चार घातिया कर्मोके नाश हो जानेसे, इन्द्रिय और मनकी सहायताके विना सम्पूर्ण पदार्थोको जो एक साथ जानता है उसे केवलज्ञान कहते है।

३२३ प्र०—कुमतिज्ञान किसको कहते है ?

उ०— मिथ्यात्वसहित इन्द्रियजन्य ज्ञानको कुमतिज्ञान कहते है। कुमतिज्ञानी बिना कहे स्वय ही दूसरोको कष्ट पहुँचाने वाले कार्योमे प्रवृत्ति करता है।

३२४. प्र०—कुश्रुतज्ञान किसको कहते है ?

उ०—मिथ्यात्वसहित श्रुतज्ञानको कुश्रुतज्ञान कहते है।

३२५ प्र०—कुअवधिज्ञान किसे कहते हैं।

उ०—मिथ्यात्वसहित अवधिज्ञानको कुअवधि या विभगज्ञान कहते है।

३२६ प्र०—किन गुणस्थानोमे कौन-कौन ज्ञान होते है ?

उ०—कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान आदिके दो गुणस्थानोमे होते है किन्तु इतनी विशेषता है कुमति और कुश्रुत एकेन्द्रिय आदिके भी होते हे जब कि कुअवधि सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकके ही होता है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान चौथेसे बारहवे गुणस्थान तक होते है। मन पर्यय छठेसे बारहवे गुण-स्थान तक होता है। और केवलज्ञान तेरहवे और चौदहवे गुणस्थानोमे तथा सिद्धोमे होता है।

३२७ प्र०—संयम किसको कहते है ?

उ०—अहिसा आदि व्रतोको धारण करने, ईर्या आदि समितियोको पालने, क्रोध आदि कषायोका निग्रह करने, मन वचन कायरूप दण्डका त्याग करने और स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियोको जीतनेका नाम सयम है।

३२८ प्र०—संयम मार्गणाके कितने भेद है ?

उ०—सात भेद है—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय, यथाख्यात, सयमासयम और असयम।

३२९ प्र०—सामायिक सयम किसको कहते है ?

उ०—'मै सब प्रकारके सावद्ययोगका त्याग करता हूँ' इस प्रकार सकल सावद्ययोगके त्यागको सामायिक सयम कहते है।

३३०. प्र०—छेदोपस्थापना सयम किसको कहते है ?

उ०—उस एक व्रतका छेद अर्थात् दो तीन आदि भेद करके उपस्थापन अर्थात् धारण करनेको छेदोपस्थापना सयम कहते है।

३३१. प्र० परिहारविशुद्धि संयम किसको कहते हैं ?

उ०—हिंसाका परिहार ही जिसमे प्रधान है ऐसे सयमको परिहारविशुद्धि सयम कहते है।

३३२. प्र०—परिहारविशुद्धि संयम किसके होता है ?

उ०—तीस वर्ष तक इच्छानुसार भोगोको भोगकर और सामायिक या छेदोपस्थापना सयम धारण करके जो प्रत्याख्यान पूर्वका भले प्रकार अध्ययन करता है और तपोविशेपसे परिहार ऋद्धिको प्राप्त कर लेता है, ऐसा तपस्वी मनुष्य तीर्थङ्करके पादमूलमे परिहारविशुद्धि सयमको धारण करता है।

३३३ प्र०—सूक्ष्मसाम्पराय संयम किसको कहते हैं ?

उ०—सामायिक अथवा छेदोस्थापना संयमको धारण करनेवाले मुनिकी कषाय जब अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती है तब वे सूक्ष्मसाम्पराय सयमी कहे जाते है।

३३४. प्र०—यथाख्यात संयम किसको कहते हैं ?

उ०—समस्त मोहनीयकर्मके उपशमसे अथवा क्षयसे जैसा आत्माका निर्विकार स्वभाव है वैसा ही स्वभाव हो जाना यथाख्यात चारित्र है।

३३५ प्र०—संयमासंयम किसको कहते हैं ?

उ०—सम्यग्दर्शनपूर्वक पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतोके धारण करनेको संयमासयम कहते है।

३३६ प्र०—असंयम किसको कहते हैं ?

उ०—जीव हिंसा और इन्द्रियोके विषयोंसे विरत न होनेको असयम कहते है।

३३७. प्र०—किन गुणस्थानोमें कौन सा संयम होता है ?

उ०—सामायिक और छेदोपस्थापना छठेसे नौवे गुणस्थान तक होते है। परिहारविशुद्धि छठे और सातवें गुणस्थानमे होता है। सूक्ष्मसाम्पराय सयम केवल दसवे गुणस्थानमे होता है। यथाख्यात सयम ग्यारहसे लेकर चौदहवे गुणस्थान तक होता है। संयमासयम पाँचवे गुणस्थानमे होता है और असयम आदिके चार गुणस्थानमे होता है।

३३८. प्र०—दर्शन किसको कहते हैं ?

उ०—सामान्य विशेषात्मक बाह्य पदार्थोंको अलग-अलग भेद रूपसे ग्रहण न करके जो सामान्य ग्रहण होता है उसको दर्शन कहते है। अर्थात् विषय और विषयीके योग्य देशमे होनेकी पूर्वावस्थाको दर्शन कहते है।

३३९ प्र०—दर्शन कब होता है ?

उ०—ज्ञानके पहले दर्शन होता है। विना दर्शनके अल्पज्ञानियोको ज्ञान नही होता। परन्तु सर्वज्ञ देवके ज्ञान और दर्शन एक साथ होते है।

३४०. प्र० – दर्शनके कितने भेद हैं ?

उ०—चार—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

३४१. प्र०—चक्षुदर्शन किसको कहते है ?

उ०—चक्षु इन्द्रियसे होनेवाले मतिज्ञानके पहले जो सामान्य ग्रहण होता है उसे चक्षुदर्शन कहते है।

३४२ प्र०—अचक्षुदर्शन किसको कहते हैं ?

उ०—चक्षुके सिवाय अन्य इन्द्रियो और मन सम्वन्धी मतिज्ञानके पहले जो सामान्य ग्रहण होता है उसे अचक्षुदर्शन कहते हे।

३४३ प्र०—अवधिदर्शन किसको कहते है ?

उ०—अवधिज्ञानसे पहले होनेवाले सामान्य ग्रहणको अवधिदर्शन कहते है।

३४४ प्र०—केवलदर्शन किसको कहते हैं ?

उ०—केवलज्ञानके साथ होनेवाले सामान्य ग्रहणको केवल दर्शन कहते है।

३४५. प्र०—कौन सा दर्शन किन गुणस्थानोमे होता है ?

उ०—चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन वारहवे गुणस्थान तक होते है। अवधि-दर्शन चौथेसे वारहवे गुणस्थान तक होता है। और केवल दर्शन तेरहवे तथा चौदहवे गुणस्थानमे और सिद्धोमे होता है।

३४६. प्र०—लेश्या किसको कहते हैं ?

उ०—कपायसे अनुरजित काययोग, वचनयोग और मनोयोगकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते है।

३४७ प्र०—लेश्याके कितने भेद हैं ?

उ०—कषायका उदय छै प्रकारका होता है—तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर, मन्दतम, कषायके उदयके इन छै प्रकारोके क्रमानुसार लेश्याके भी छै भेद होते है—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या।

३४८ प्र०—कौन लेश्या किन गुणस्थानोमे होती है ?

उ०—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या, चौथे गुणस्थान तक, तेजोलेश्या और पद्मलेश्या सातवें गुणस्थान तक और शुक्ललेश्या तेरहवे गुण-स्थान तक होती है।

३४९. प्र०—भव्य मार्गणाके कितने भेद हैं ?

उ०—दो है—भव्य और अभव्य।

३५०. प्र०—भव्य अभव्य किसको कहते हैं ?

३४८—इस सम्वन्धमें विशेष जाननेके लिए देखो—पट् खण्डागम, १ पु०, पृ० ३९२-३९३।

उ०—जो जीव आगे मुक्ति प्राप्त करेंगे उन्हे भव्य कहते हे। और मुक्ति गमनकी योग्यता न रखनेवाले जीवोको अभव्य कहते है।

३५१. प्र०—भव्य-अभव्यके कितने गुणस्थान होते है ?

उ०—भव्य जीवोके चौदह गुणस्थान होते है और अभव्योके केवल एक पहला गुणस्थान ही होता है।

३५२. प्र०—सम्यक्त्व किसको कहते हैं ?

उ०—जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा कहे गये छै द्रव्य, पाँच अस्तिकाय और नौ पदार्थोंका श्रद्धान करनेको सम्यक्त्व कहते हे।

३५३ प्र०—सम्यक्त्व मार्गणाके कितने भेद हैं ?

उ०—छै भेद है—उपशम सम्यक्त्व, वेदक या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सासादन सम्यक्त्व और मिथ्यात्व।

३५४. प्र०—उपशम सम्यक्त्व किसको कहते हैं ?

उ०—अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व मोहनीय, इन सात कर्मप्रकृतियोके उपशमसे, कीचड़के नीचे बैठ जानेसे निर्मल हुए जलके समान जो पदार्थोंका निर्मल श्रद्धान होता है उसे उपशम सम्यग्दर्शन कहते है। उसके दो भेद है–प्रथमोपशम सम्यक्त्व और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व।

३५५. प्र०—प्रथमोपशम सम्यक्त्व किसको होता है ?

उ०—चारो गतियोमेसे किसी भी गतिमे वर्तमान भव्य, सैनी पञ्चेन्द्रिय, पर्याप्तक, विशुद्ध परिणामी साकार उपयोगी, शुभलेश्या वाले और करणलब्धिसे सहित अनादि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि जीवको ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्ति होती है।

३५६. प्र०—लब्धियाँ कितनी हैं ?

उ०—पाँच है—क्षयोपशम लब्धि, विशुद्धि लब्धि, देशना लब्धि, प्रायोग्य लब्धि और करण लब्धि। इनमेसे चार लब्धियाँ तो भव्य अभव्य सभीके होती है, किन्तु करण लब्धि भव्यके ही होती है और उसके होने पर सम्यक्त्व अवश्य होता है।

३५७ प्र०—क्षयोपशम लब्धि किसको कहते हैं ?

३५३—लब्धिसार, गा० २।

उ०—जिस समय कर्मोका अनुभाग प्रतिसमय अनन्तगुणा घटता हुआ उदयमे आता है तब क्षयोपशम लब्धि होती है। क्योकि उत्कृष्ट अनुभागके अनन्तवे भाग मात्र देशघाती स्पर्द्धकोका उदयाभाव रूप क्षय और उदयको न प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धक का सदवस्था रूप उपशमकी प्राप्तिका नाम क्षयोपशम लब्धि है।

३५८ प्र०—विशुद्धि लब्धि किसको कहते हैं ?

उ०—क्षयोपशम लब्धिके होने से साता वेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियोके बन्धमे कारण जो धर्मानुरागरूप शुभ परिणाम होता है उसकी प्राप्तिको विशुद्धि लब्धि कहते है।

३५९ प्र०—देशना लब्धि किसको कहते है ?

उ०—छै द्रव्य और नौ पदार्थोका उपदेश करनेवाले आचार्य वगैरहके लाभ-को अथवा उपदेशित पदार्थकी धारणाके लाभको देशनालब्धि कहते है ?

३६० प्र०-प्रायोग्य लब्धि किसको कहते हैं ?

उ०—ऊपर कही गयी तीन लब्धियोसे युक्त जीव प्रति समय विशुद्ध होता हुआ, आयुके विना शेष सात कर्मोकी स्थिति अन्त कोडाकोडी सागर प्रमाण शेष रखता है। तथा पहले जो अनुभाग था, उसमे अनन्तका भाग देने पर बहुभाग प्रमाण अनुभागको देखकर शेप एक भाग प्रमाण अनुभागको रखता है। इस कार्यको करनेकी योग्यताके लाभको प्रायोग्य लब्धि कहते है।

३६१ प्र०—करण लब्धि किसको कहते हैं ?

उ०—अध करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप परिणामोके लाभको करण लब्धि कहते है। इसका स्वरूप पहले कहा जा चुका है।

३६२. प्र०—प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति किस प्रकार होती है ?

उ०—अनिवृत्तिकरण काल अन्तर्मुहूर्तके सख्यात भागोमेसे वह भाग काल बीत जाने पर जब एक भाग काल शेष रहता है तब प्रथम सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ अनादि मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्वका अन्तरकरण करता है और सादिमिथ्यादृष्टि जीव दर्शन मोहनीयका अन्तरकरण करता है। वह सत्तामे स्थित मिथ्यात्व प्रकृतिके द्रव्यको मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति रूप परिणमाता है।

३६३ प्र०—प्रथमोपशम सम्यक्त्वके छूटनेपर क्या अवस्था होती है ?

उ०—उपशम सम्यक्त्वका अन्तर्मुहूर्तकाल बीतने पर अनादि मिथ्यादृष्टिके

३६२ षट्खण्डागम, ख० १, भा० ९, चूलिका ८।

तो मिथ्यात्वका उदय होता है और सादि मिथ्यादृष्टि या तो मिथ्यादृष्टि होकर वेदक अथवा उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है या सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करता है।

३६४. प्र०—अन्तरकरण किसको कहते है ?

उ०--जिस कर्मका अन्तरकरण करना हो उसकी प्रथम स्थिति और द्वितीय स्थितिको छोडकर मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थितिके निषेकोका अभाव करनेको अन्तरकरण कहते है। जैसे, मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्वकर्मका अन्तरकरण करता है। इसमे अन्तर्मुहूर्त काल लगता है। सो वह अनादिकालसे उदयमे आने-वाले मिथ्यात्वकर्मकी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति सम्बन्धी निषेकोको छोडकर उससे ऊपरके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिके निषेकोको अपने स्थानसे उठा-उठाकर कुछको प्रथम स्थिति (नीचेकी स्थिति) सम्बन्धी निषेकोमे मिला देता है और कुछको द्वितीय स्थिति (ऊपरकी स्थिति) सम्बन्धी निषेकोमे मिला देता है। इस तरह वह तब तक करता रहता है जबतक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिके पूरे निषेक समाप्त न हो जाये। जब मध्यवर्ती समस्त निषेक ऊपरकी अथवा नीचेकी स्थितिके निषेकोमे दे दिये जाते है और प्रथम स्थिति तथा द्वितीय स्थितिके बीचका अन्तरायाम मिथ्यात्व कर्मके निषेकोसे सर्वथा शून्य हो जाता है तब अन्तरकरण पूर्ण हो जाता है।

३६५. प्र०—वेदक अथवा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व किसको कहते है ?

उ०--अनन्तानुबन्धी कषायका अप्रशस्त उपशम अथवा विसयोजन होनेपर और मिथ्यात्व तथा सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृतिका प्रशस्त उपशम अथवा अप्रशस्त उपशम अथवा क्षयोन्मुख होने पर, तथा देशघाती सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होने पर जो तत्त्वार्थश्रद्धान होता है उसे वेदकसम्यक्त्व कहते है। इसीको क्षायोप-शमिक सम्यक्त्व भी कहते है। क्योकि सर्वघाती अनन्तानुबन्धी कषाय, मिथ्यात्व और सम्यक् मिथ्यात्वका उदयाभाव रूप क्षय तथा सदवस्थारूप उपशम होनेपर और देशघाती सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेपर वेदक सम्यक्त्व होता है। इससे इसीका दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है।

३६६ प्र०—अप्रशस्त उपशम या देशोपशम किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमे विवक्षित प्रकृति उदय आने योग्य तो न हो किन्तु उसका स्थिति अनुभाग घटाया बढाया जा सके अथवा सक्रमण वगैरह किये जा सके, उसे अप्रशस्त उपशम या देशोपशम कहते है।

३६७ प्र०—प्रशस्त उपशम या सर्वोपशम किसको कहते है ?

उ०—जिसमे विवक्षित प्रकृति न तो उदय आने योग्य ही हो और न उसका स्थिति अनुभाग घटाया जा सके तथा न सक्रमण वगैरह ही किया जा सके उसे प्रशस्त उपशम या सर्वोपशम कहते है ?

३६८ प्र०—वेदक सम्यक्त्व की स्थिति कितनी है ?

उ०—वेदक सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति छियासठ सागर प्रमाण है।

३६९ प्र०—क्षायिक सम्यक्त्व किसको कहते है ?

उ०—अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक्-मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन सात प्रकृतियोके क्षय से जो निर्मल श्रद्धान होता है वह क्षायिक सम्यक्त्व है।

३७०. प्र०—क्षायिक सम्यक्त्व की उत्पत्ति का क्या कम है ?

उ०—असयत, देश सयत, प्रमत्त सयत अथवा अप्रमत्त सयत गुणस्थानवर्ती वेदक सम्यग्दृष्टि मनुष्य पहले तो अध करण अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके अन्तमे अनन्तानुवन्धी क्रोध मान माया लोभ का सवियोजन करता है अर्थात् उन्हे बारह कपाय और नव नोकपाय रूप कर देता है। उसके पश्चात् दर्शन मोहनीय की क्षपणा का आरम्भ करता है।

३७१. प्र०—दर्शन मोहकी क्षपणाका आरम्भ कहाँ करता है ?

उ०—अढाई द्वीप-समुद्रोमे स्थित पन्द्रह कर्मभूमियोमे जहाँ जिस कालमे केवली तीर्थङ्कर होते है वहाँ उस कालमे कर्मभूमिया मनुष्य ही दर्शन मोहनीयके क्षपणा का आरम्भ करता है।

३७२ प्र०—दर्शन मोहनीयका क्षपणाका प्रस्थापक कौन कहलाता है ?

उ०—दर्शन मोहनीय की क्षपणाके लिए किये गये अध करणके प्रथम समयसे लेकर जबतक जीव मिथ्यात्व और सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृतिका द्रव्यको सम्यक्त्व प्रकृतिरूप सक्रमण कराता है जवतक उसे दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक कहते है।

३७३. प्र०—दर्शन मोहनीयकी क्षपणाका निष्ठापक कब कहलाता है ?

उ०—कृतकृत्य वेदक होनेके प्रथम समयसे लेकर आगेके समयोमे दर्शन मोहकी क्षपणा करनेवाला जीव निष्ठापक कहलाता है।

३७४. प्र०—कृतकृत्य वेदक किसको कहते है ?

उ०—दर्शन मोहनीयकी क्षपणाके लिये किये गये तीन कारणोमेसे अनिवृत्ति-

करणके अन्त समयमे सम्यक्त्व प्रकृतिके अन्तिम फालिके द्रव्यको नीचेके निषेकोमे क्षेपण करनेके पश्चात् अनन्तर समयसे लगाकर अनिवृत्तिकरण कालके सख्यातवें भाग मात्र अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त जीव कृतकृत्य वेदक कहा जाता है क्योकि जिसने करने योग्य कार्य कर लिया उसे कृतकृत्य कहते है सो दर्शनमोहकी क्षपणाके योग्य कार्य अनिवृत्तिकरण कालके अन्त समयमे ही हो जाता है। अत वह कृतकृत्य वेदक कहा जाता है।

३७५. प्र०—दर्शन मोहकी क्षपणाका निष्ठापन कहाँ करता है ?

उ०—दर्शन मोहनीयकी क्षपणाका आरम्भ करनेवाला मनुष्य कृतकृत्य वेदक होनेके पश्चात् आयुका क्षय होनेसे यदि मरणको प्राप्त होता है तो सम्यक्त्व ग्रहण करनेसे पहले बाँधी हुई आयुके अनुसार चारो गतियोमे उत्पन्न होकर दर्शन मोहनीयकी क्षपणाको पूर्ण करता है। उसमे इतना विशेष है कि कृतकृत्य वेदकके कालके चार भाग करके उनमेसे यदि प्रथम भागमे मरता है तो नियमसे देव ही होता है, दूसरे भागमे मरनेसे देव या मनुष्य होता है, तीसरे भागमे मरनेसे देव मनुष्य या तिर्यञ्च होता है और चौथे भागमे मरनेसे चारोमेसे किसी भी गतिमे जन्म लेता है।

३७६. प्र०—क्षायिक सम्यक्त्वकी कितनी स्थिति है ?

उ०—अन्य सम्यक्त्वोकी तरह क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होकर छूटता नही है। फिर भी क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होनेके पश्चात् क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवके ससारमे रहनेकी अपेक्षासे क्षायिक सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त आठ वर्ष कम दो पूर्व कोटी और तैतीस सागरसे कुछ अधिक है क्योकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम तो उसी भवसे मुक्त हो जाता है जिस भवमे उसने दर्शनमोहका क्षय करके क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया है। यदि क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करनेसे पहले उसने पर भवकी आयु बाँध ली हो तो वह तीसरे भवसे मुक्त हो जाता है और यदि उसने मनुष्य या तिर्यञ्चकी आयु बाँधी हो तो चौथे भवमे अवश्य मुक्त हो जाता है।

३७७ प्र०—क्षायिक सम्यक्त्व किन गुणस्थानोमे रहता है ?

उ०—चौथेसे चौदहवें गुणस्थान तक।

३७८. प्र०—औपशमिक सम्यक्त्व कितने गुणस्थानोमे रहता है ?

उ०—प्रथमोपशम सम्यक्त्व चौथेसे सातवें गुणस्थान तक और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व चौथेसे ग्यारहवें गुणस्थान तक रहता है।

---

३७५ षट्खण्डागम, पु० ४, पृ० २६।

३७९. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कितने गुणस्थानो में रहता है ?

उ०—चौथेसे सातवे गुणस्थान तक।

३८० प्र०—किस गतिमे कितने सम्यक्त्व होते हैं ?

उ०—प्रथम नरक मे तीनो सम्यक्त्व पाये जाते है, किन्तु शेष छै नरकोमे क्षायिक सम्यक्त्व नही पाया जाता। तिर्यञ्चो, मनुष्यो और देवोमे तीनो सम्यक्त्व पाये जाते है। केवल इतनी विशेषता है कि भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोमे तथा देवियोमे क्षायिक सम्यक्त्व नही पाया जाता।

३८१ प्र०—सज्ञी किसको कहते हैं ?

उ०—जो जीव मनकी सहायतासे शिक्षा वगैरहको ग्रहण कर सकता है उसे सज्ञी कहते है और जो ऐसा नही कर सकता उसे असज्ञी कहते है ?

३८२. प्र०—सज्ञीके कितने गुणस्थान होते है ?

उ०—संज्ञीके प्रथमसे लेकर बारह गुणस्थान होते है और असज्ञीके केवल एक पहला गुणस्थान ही होता है।

३८३. प्र०—आहारक किसको कहते है ?

उ०—औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीरोमेसे अपने योग्य किसी एक शरीर, भाषा तथा मनके योग्य पुद्गल वर्गणाओको जो जीव नियमसे ग्रहण करता है उसे आहारक कहते है। और औदारिक आदि शरीरके योग्य पुद्गल वर्गणाओके ग्रहण न करनेवाले जीवोको अनाहारक कहते है।

३८४ प्र०—अनाहारक जीव कौन हैं ?

उ०—विग्रह गति मे स्थित जीव, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करनेवाले सयोगकेवली तथा अयोगकेवली और सिद्ध जीव नियमसे अनाहारक होते है, शेष जीव आहारक होते है।

३८५ प्र०—आहारकके कितने गुणस्थान होते है ?

उ०—आहारकके पहलेसे लेकर तेरह गुणस्थान तक होते है।

३८६ प्र०—अनाहारकके कितने गुण स्थान होते हैं ?

उ०-अनाहारकोके पाँच गुण स्थान होते है—पहला, दूसरा, चौथा, तेरहवाँ और चौदहवाँ।

८

३८७ प्र०—अनुयोगद्वार कितने है ?

उ०—सत्, सख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्प वहुत्व ये आठ अनुयोगद्वार है।

३८८ प्र०—अनुयोगद्वारोका क्या प्रयोजन है ?

उ०—ये आठ अनुयोगद्वार अर्थात् अधिकार अवश्य ही जानने चाहिये क्योकि इनकी जानकारीके बिना गुणस्थान और मार्गणास्थानोका ठीक-ठीक ज्ञान नही हो सकता।

३८९ प्र०—सत्प्ररूपणा किसका कथन करती है ?

उ०—सत्प्ररूपणा पदार्थोके अस्तित्वका कथन करती है। उस कथन के दो प्रकार है—एक ओघ कथन और एक आदेश कथन। सामान्य कथनको ओघ कहते है। जैसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है, सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान है, आदि। और विशेष रूपसे कथन करनेको आदेश कहते है। जैसे, नारकी जीवोके चार गुणस्थान होते है, तिर्यञ्चोके पाँच गुणस्थान होते है आदि।

३९० प्र०—संख्या अनुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—सत्प्ररूपणामे जिन पदार्थोका अस्तित्व कहा गया है उनकी सख्याका कथन सख्या अनुयोगमे होता है। जैसे, मिथ्यादृष्टि अनन्त है, सासादन सम्यग्दृष्टि पल्यके असख्यातवे भाग है। इस कथनके भी दो प्रकार है—ओघ और आदेश।

३९१. प्र०—क्षेत्र अनुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—उक्त दोनो अनुयोगोके द्वारा जाने हुए द्रव्योकी वर्तमान अवगाहनाका कथन क्षेत्रानुयोग करता है। जैसे मिथ्यादृष्टि जीव सर्वलोकमे रहते है, इसके भी पूर्ववत् दो भेद है।

३९२. प्र०—स्पर्शनानुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—उक्त तीन अनुयोगोके द्वारा जाने हुए द्रव्योके अतीतकाल विशिष्ट क्षेत्रका कथन अर्थात् भूतकालमे जितने क्षेत्रको स्पर्श किया है और वर्तमानमे जितने क्षेत्रको स्पर्श किया जा रहा है, उसका कथन स्पर्शनानुयोग करता है। इस कथनके भी पूर्ववत् दो प्रकार है।

२९३ प्र०—कालानुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—पूर्वोक्त चार अनुयोगोके द्वारा जाने गये द्रव्योके कालका कथन कालानुयोग

करता है। जैसे मिथ्यादृष्टि जीव सर्वदा पाये जाते है। इसके भी पूर्ववत् दो प्रकार है।

३९४ प्र० —अन्तरानुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—जिन पदार्थोके अस्तित्व, सख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, और कालका ज्ञान हो गया है उनके अन्तर कालका कथन अन्तरानुयोग करता है। जैसे एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्व गुणस्थानका अन्तरकाल कमसे कम अन्तर्मुहूर्त है।

३९५. प्र०—भावानुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—उक्त अनुयोगोके द्वारा ज्ञात द्रव्योके भावोका कथन भावानुयोग करता है। जैसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे औदायिक भाव होता है, आदि। इस कथनके भी पूर्ववत् दो प्रकार है।

३९६. प्र०—अल्पबहुत्वानुयोग किसका कथन करता है ?

उ०—उक्त अनुयोगोके द्वारा जाने हुए द्रव्यो के अल्प-बहुत्व हीनता—अधिकताका—कथन अल्पबहुत्वानुयोग करता है। इस कथनके भी पूर्ववत् दो प्रकार है।

३९७ प्र०—मिथ्यादृष्टि जीव कितने है ?

उ०—अनन्त है।

३९८. प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव कितने है ?

उ०—पल्योपम असख्यातवे भाग है ?

३९९ प्र०—प्रमत्त संयत जीव कितने है।

उ०—कोटिपृथक्त्व प्रमाण है। 'पृथक्त्व'से तीन कोटिके ऊपर और नौ कोटिके नीचे जितनी सख्या है वह लेना चाहिए। अत प्रमत्तसयत जीवोका प्रमाण पाँच करोड, तेरानबे लाख, अट्ठानबे हजार दो सौ छह है।

४०० प्र०—अप्रमत्त संयत जीव कितने है ?

उ०—सख्यात है, अर्थात् प्रमत्तसयत जीवोके प्रमाणसे अप्रमत्तसयत जीवोका प्रमाण आधा है, क्योकि प्रमत्तसयत गुणस्थानके कालसे अप्रमत्तसयत गुणस्थानका काल सख्यातगुणा हीन है।

४०१ प्र०—उपशम श्रेणीके चार गुणस्थानोमे जीवोंका प्रमाण कितना है ?

उ०—उपशम श्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमे एक समयमे जघन्यसे एक जीव प्रवेश करता है और उत्कृष्टसे चौवन जीव प्रवेश करते है। यह सामान्य कथन

है। विशेषकी अपेक्षा निरन्तर आठ समय ,पर्यन्त उपशम श्रेणीपर चढनेवाले जीवोमे अधिकसे अधिक प्रथम समयमे सोलह, दूसरे समयमे चौवीस, तीसरे समयमे तीस, चौथे समयमे छत्तीस, पांचवे समयमे बयालीस, छठे समयमे अड-तालीस, सातवे समयमे चौवन और आठवें समयमे भी चौवन जीव उपशम श्रेणी पर चढते है। इस सबका प्रमाण तीन सौ चार होता है।

४०२. प्र०—क्षपक श्रेणीके चार गुणस्थानोमे जीवोका प्रमाण कितना है ?

उ०—छै महीना आठ समयमे क्षपक श्रेणीके योग्य आठ समय होते हैं। उनमे जघन्यसे एक जीव एक समयमे और उत्कृष्टमे एक सौ आठ जीव क्षपक गुणस्थानमे प्रवेश करते है। यह सामान्य कथन है। विशेषसे क्षपकश्रेणीवालोका प्रमाण उपशम श्रेणीवालोसे दुगुना है।

४०३. प्र०—सयोगकेवली जीव कितने हैं ?

उ०—सयोगकेवली जीवोकी सख्या आठ लाख अट्ठानवे हजार पॉच सौ दो है।

४०४ प्र०—अयोगकेवली जीव कितने है ?

उ०—अयोगकेवली जीवोका प्रमाण क्षपक श्रेणीवाले जीवोके बराबर हो होना है।

४०५ प्र०—मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमे रहते है ?

उ०—सर्वलोकमे रहते है।

४०६ प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमे रहते है ?

उ०—लोकके असख्यातवे भाग प्रमाण क्षेत्रमे रहते है। किन्तु इतना विशेष है कि प्रतर समुद्घात करनेवाले सयोगकेवली लोकके असख्यात बहुभाग प्रमाण क्षेत्रमे और लोकपूरण समुद्घात करनेवाले सयोगकेवली सर्वलोकमे रहते हैं।

४०७ प्र०—मिथ्यादृष्टि जीवोने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?

उ०—सर्वलोक स्पर्श किया है।

४०८ प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?

उ०—लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है। और विहारवत्स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात तथा वैक्रियिक समुद्घातगत सासादन सम्यग्दृष्टि

४०७—षट्खण्डागम, पु० ४, पृ० २६।

जीवोने त्रसनालीके चौदह भागोमेसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है। और मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले सासादन सम्यग्दृष्टी जीवोने त्रसनालीके चोदह भागोमेसे कुछ कम वारह भाग प्रमाण क्षेत्रको स्पर्श किया है। जो इस प्रकार है—सुमेरु पर्वतके मूल भागसे लेकर ऊपर ईषत्प्राग्भार पृथिवी तक सात राजु होते है और नीचे छठी पृथिवी तक पॉच राजु होते है। उन दोनोंको मिला देनेसे सासादन सम्यग्दृष्टी जीवोके मारणान्तिक क्षेत्रकी लम्बाई कुछ कम वारह राजु होती है।

४०९. प्र०—विहारवत्स्वस्थान वगैरहसे क्या अभिप्राय है ?

उ०—स्वस्थान, समुद्घात और उपपादके भेदसे सब जीवोकी अवस्था तीन प्रकारकी होती है। उनमे स्वस्थानके दो प्रकार है—एक स्वस्थानस्वस्थान और दूसरा विहारवत्स्वस्थान। अपने उत्पन्न हानेके ग्राम आदिमे सोना, उठना-बैठना वगैरह स्वस्थानस्वस्थान है और अपने उत्पत्ति स्थानको छोडकर अन्यत्र आना-जाना आदि विहारवत्स्वस्थान है। सात समुद्घातोका स्वरूप पहले बतलाया है। उपपाद उत्पन्न होनेके प्रथम समयमे होता है। इन अवस्थाओके द्वारा जीवने जितने क्षेत्रमे गमानागमन वगैरह किया हो उतना उसका स्पर्श होता है।

४१०. प्र०—सम्यग्मिथ्यादृष्टी और असंयत सम्यग्दृष्टी जीवोने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?

उ०—स्वस्थानकी अपेक्षा लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है। और विहारवत्स्वस्थान, वेदना कषाय और वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किया है जो कि मेरुके मूलसे ऊपर छै राजु और नीचे दो राजु प्रमाण है। तथा उपपादकी अपेक्षा असयतसम्यग्दृष्टी जीवोने कुछ कम छै बटे चौदह राजु भाग स्पर्श किया है, क्योकि असयत सम्यग्दृष्टी जीवोका उपपाद क्षेत्र इससे नीचे नही है।

४११. प्र०—संयतासंयत जीवोने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?

उ०—लोकके असख्यातवे भाग क्षेत्र स्पर्श किया है। और मारणान्तिक समुद्घात अवस्थामे कुछ कम छै बटे चौदह राजु क्षेत्र स्पर्श किया है।

४१२ प्र०—प्रमत्तसयत गुणस्थानसे लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?

उ०—लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है। किन्तु सयोगकेवलियोने लोकका असख्यातवॉ भाग, असख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है।

४१३ प्र०—मिथ्यादृष्टी जीव कितने काल तक होते है ?

उ०—नाना जीवोकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टी सदा रहते है। एक जीवकी अपेक्षा तीन प्रकार है—अनादि अनन्त, अनादि सान्त और सादि सान्त। अभव्य मिथ्यादृष्टीका काल अनादि अनन्त है क्योकि अभव्यके मिथ्यात्वका आदि और अन्त नही होता। भव्य जीवके मिथ्यात्वका काल अनादि सान्त भी होता है और सादि सान्त भी होता हे। सादि सान्त मिथ्यात्वका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है क्योकि कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टी, अथवा असयत सम्यग्दृष्टी, अथवा सयतासयत अथवा प्रमत्तसयत जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और अन्तर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्वमे रहकर पुन: सम्यग्मिथ्यात्वको या असयत सम्यक्त्वको या सयमासयमको अथवा अप्रमत्त सयमको प्राप्त कर सकता है। तथा एक जीवकी अपेक्षा सादि सान्त मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन है। क्योकि एक बार सम्यक्त्व होके छूट जाने पर भी जीव अधिकसे अधिक कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन कालतक ही ससारमे ठहरता है।

४१४. प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टी जीव कितने काल तक होते हैं?

उ०—नाना जीवोकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय तक होते है। और उत्कृष्टसे पल्योपमके असख्यातवे भाग कालतक होते है। खुलासा इस प्रकार है—पल्योपमके असख्यातवे भाग मात्र उपशम सम्यग्दृष्टी जीव उपशम सम्यक्त्वके कालमे एक समय मात्र शेष रहने पर एक साथ सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए और एक समय तक सासादन सम्यग्दृष्टी रहकर दूसरे समयमे सबके सब मिथ्यात्वमे चले गये। उस समय तीनो लोकोमे कोई भी सासादन सम्यग्दृष्टी नही रहा। इस तरह नाना जीवोकी अपेक्षा जघन्यकाल एक समय प्राप्त हुआ। पल्योपमके असंख्यातवे भाग उपशम सम्यग्दृष्टी जीव उपशम सम्यक्त्वके कालमे एक समयसे लेकर छै आवली अवशिष्ट रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए। वे जब तक मिथ्यात्वको प्राप्त नही होते तब तक अन्य भी उपशम सम्यग्दृष्टी सासादन गुणस्थानको प्राप्त होते रहते है। इस तरह उत्कृष्टसे पल्योपमके असख्यातवे भाग काल तक सासादन गुणस्थान पाया जाता है। और एक जीवकी अपेक्षा सासादन गुणस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल छै आवली है, क्योकि उपशम सम्यक्त्वके कालमे कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक छै आवली काल शेष रहने पर उपशम सम्यग्दृष्टी जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है। और जितना उपशम सम्यक्त्वका काल शेष रहता है उतना ही सासादन गुणस्थानका काल होता है।

४१५. प्र०—सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीव कितने काल तक होते है?

उ०—नाना जीवोकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्टसे पल्योपमके असख्यातवे भाग काल तक होते है। खुलासा इस प्रकार है—

मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोकी सत्ता रखनेवाले मिथ्यादृष्टि अथवा वेदक सम्यक्त्व सहित असयत सम्यग्दृष्टी सयतासयत तथा प्रमत्तसयत गुणस्थान वाले जीव परिणामोके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुए और वहाँ अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहर कर मिथ्यात्वको अथवा असयत सम्यग्दृष्टीको प्राप्त हो गये। तब सम्यक् मिथ्यात्व नष्ट हो गया। इस प्रकार उसका काल अन्त-र्मुहूर्त सिद्ध हुआ। इसी तरह पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुए और वहाँ अन्तर्मुहूर्त कालतक रहे। जब तक वे वहाँ रहे तब तक अन्य भी पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती जीव सम्यक् मिथ्यात्वको प्राप्त होते रहे। इस तरह पल्योपमके असख्यातवे भाग मात्र कालतक सम्यक् मिथ्यात्व गुणस्थानमे जीव बने रहते है। उसके पश्चात् नियमसे उसमे कोई जीव नहीं रहता। एक जीवकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीवका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु जघन्यसे उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा है। इससे अधिक कालतक कोई जीव इस गुणस्थानमे नही ठहर सकता।

४१६ प्र०—असंयत सम्यग्दृष्टी जीव कितने काल तक होते है ?

उ०—नाना जीवोकी अपेक्षा सर्वदा होते है, उनका कभी अभाव नही होता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। जो इस प्रकार है—कोई प्रमत्तसयत या अप्रमत सयत या उपशम श्रेणी वाला जीव मर कर एक समय कम तेतीस सागर आयु वाले अनुत्तर विमानवासी देवोमे उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योमे उत्पन्न हुआ। वहाँ अन्तर्मुहूर्त आयुके शेष रहने तक वह असयत सम्यग्दृष्टी ही रहा। इसके पश्चात् अप्रमत सयमी होकर क्रमसे मुक्त हो गया। इस तरह अन्तर्मुहूर्त कम पूर्व कोटि अधिक तेतीस सागर असयत सम्यग्दृष्टीका उत्कृष्ट काल होता है।

४१७ प्र०—ऊपर असंयत सम्यग्दृष्टी जीवको एक समय कम तेतीस सागर-की आयु वाले देवोमे ही क्यो उत्पन्न कराया है ?

उ०—उसके बिना असयत सम्यग्दृष्टी गुणस्थानका काल इतना नही बन सकता, क्योकि जो पूरे तेतीस सागरकी आयुवाले देवोमे उत्पन्न होकर मनुष्योमे उत्पन्न होगा। वह वर्ष पृथक्त्व आयुके शेष रहने पर नियमसे सयम धारण कर लेगा। और जो एक समय कम तेतीस सागरकी आयुवाले देवोमे उत्पन्न होकर मनुष्योमे उत्पन्न होगा वह अन्तर्मुहूर्त कम पूर्व कोटि काल तक असयमके साथ रहकर फिर निश्चयसे सयम धारण करेगा।

४१८ प्र०—संयतासयत जीव कितने काल तक होते है ?

उ०—नाना जीवोकी अपेक्षा सर्वदा होते है, उनका कभी अभाव नही होता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष है। जो इस प्रकार हे—कोई तिर्यञ्च या मनुष्य मिथ्यादृष्टी सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक सम्मूर्छन तिर्यञ्चोमे उत्पन्न हुआ। सबसे लघु अन्तर्मुहूर्त कालमे पर्याप्त होकर, विश्राम लेता हुआ, विशुद्ध होकर सयमासयमी हो गया और पूर्वकोटि कालतक सयमासयमको पालकर मरकर देव हो गया। तब सयमासयम छूट गया। इस तरह आदिके तीन अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि प्रमाण सयमासयमका उत्कृष्ट काल है।

४१९. प्र०—प्रमत्त और अप्रमत्त संयत कितने काल तक होते हैं ?

उ०—नाना जीवोकी अपेक्षा सर्वदा होते है। इनका एक क्षणके लिये भी कभी अभाव नही होता। एक जीवकी अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्त सयतका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। जो इस प्रकार हे—कोई अप्रमत्त सयत एक समय आयु शेष रहने पर प्रमत्तसयत हो गया और एक समय तक प्रमत्तसयत रहकर मरकर देव हो गया। इसी तरह कोई प्रमत्तसयत एक समय आयु शेष रहने पर अप्रमत्त सयत हो गया और एक समय तक अप्रमत्त सयत रहकर मरकर देव हो गया। इस तरह प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानका जघन्य काल एक समय होता है। एक अप्रमत्तसयत प्रमत्तसयत होकर और अन्तर्मुहूर्त तक वहाँ रहकर मिथ्यादृष्टी हो गया। और एक प्रमत्तसयत अप्रमत्त सयत होकर और एक अन्तर्मुहूर्त तक रहकर प्रमत्तसयत हो गया। इस तरहसे दोनोका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है।

४२० प्र०—चारो उपशम श्रेणीवाले जीव कितने काल तक होते है ?

उ०—नाना जीवोकी अपेक्षा जघन्यसे एक समयतक और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त तक होते हे। जो इस प्रकार है—उपशम श्रेणीसे उतरनेवाले अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समय आयु शेष रहनेपर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती हुए। और एक समय तक वहाँ रहकर दूसरे समयमे मरे और देव हो गये। इस तरह अपूर्वकरण उपशामकका जघन्य काल एक समय हुआ। इसी तरह शेष तीनो उपशामकोका जघन्यकाल भी जानना। विशेष इतना है कि अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती उपशामक जीवोका एक समय काल उपशमश्रेणीपर चढते और उतरते हुए दोनो प्रकारसे होता हे किन्तु उपशान्तकषाय उपशामकका एक समय काल चढते हुए जीवोकी अपेक्षा ही होता है। उत्कृष्ट काल इस प्रकार है—अनेक अप्रमत्त सयत जीव तथा उपशम श्रेणीसे उतरनेवाले अनेक अनिवृत्ति-करण गुणस्थानी जीव अपूर्वकरण उपशामक हुए। जब तक वे उस गुणस्थानमे

रहे तब तक अन्य भी चढते-उतरते हुए जीव अपूर्वकरण गुणस्थानमे आते रहे और अन्तर्मुहूर्त कालतक बने रहे। इसके पश्चात् अपूर्वकरणमे कोई भी जीव नही रहा। इसी तरह तीनो उपशामकोका उत्कृष्टकाल समझ लेना चाहिये। एक जीवकी अपेक्षा चारो उपशामकोका जघन्यकाल एक समय है जो उक्त एक समय कालकी तरह होता है। उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है क्योकि अपूर्वकरण आदि चारो गुणस्थानोमेसे प्रत्येकमे एक जीव अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तकाल तक ठहर सकता है।

४२१ प्र०—चारों क्षपको और अयोगकेवलीका कितना काल है ?

उ०—नाना जीवोकी अपेक्षा और एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकाल भी और उत्कृष्टकाल भी सामान्यसे अन्तर्महूर्त है।

४२२ प्र०—सयोगकेवली कितने काल तक होते है ?

उ०—नाना जीवोकी अपेक्षा सर्वदा होते है, कभी भी इनका अभाव नही होता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है क्योकि कोई क्षीणकषाय सयोगकेवली हो अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर अयोगकेवली हो गया। उत्कृष्टकाल आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी प्रमाण है, क्योकि पूर्वकोटीकी आयुवाला कोई मनुष्य आठ वर्षका होनेपर सयमी हुआ और फिर क्रमसे सयोगकेवली हुआ वहाँ आठ वर्ष कुछ अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी कालतक रहकर अयोगकेवली हो गया।

९

४२३. प्र०—मिथ्यादृष्टिका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवोकी अपेक्षा अन्तरकाल नही है क्योकि मिथ्यादृष्टि जीवोका कभी भी अभाव नही होता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम एक सौ वत्तीस सागर है क्योकि कोई मिथ्यादृष्टी जीव एक अन्तर्मुहूर्तके लिये सम्यग्दृष्टि होकर पुन. मिथ्यादृष्टि हो जाता है। तथा कोई मिथ्यादृष्टि जीव कुछ कम छियासठ सागर कालतक सम्यग्यदृष्टि रहकर अन्तिम समयमे सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर पुनः छियासठ सागरके लिये सम्यग्दृष्टि हो जाता है और अन्तर्मुहूर्त कम दो छियासठ सागरके अन्तिम समयमे मिथ्यात्वको प्राप्त होता है। इस तरह एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक सौ वत्तीस सागर होता है।

४२४. प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवोकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असख्यातवे भाग है। क्योकि कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक पल्यके असख्यातवें भाग कालतक सासादन सम्यक्त्वमे कोई भी जीव नही पाया जाता। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल पल्योपमके असख्यातवें भाग है, क्योकि उपशम सम्यक्त्वसे गिरने पर ही सासादन सम्यक्त्व होता है और एक वार उपशम सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमे आजाने पर पुनः पल्योपमके असख्यातवें भाग काल वीतने पर ही उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है। एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन है, क्योकि एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्त ससारको अर्ध पुद्गल परावर्तनमात्र किया पुनः अन्तर्मुहूर्ततक सम्यग्दृष्टि रहकर वह सासादनसम्यक्त्वी हो गया। वहाँसे मिथ्यात्वमे चला गया और अर्धपुद्गल परावर्तन कालतक मिथ्यात्वमे रहकर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुन सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस तरह उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना।

४२५ प्र०—सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवोकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यका असख्यातवा भाग हे। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन है। इसका उपपादन सासादन सम्यग्दृष्टिके अन्तरकालको दृष्टिमे रखकर कर लेना चाहिए।

४२६ प्र०—असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवोकी अपेक्षा अन्तरकाल नही है, क्योकि उक्त गुणस्थानोमे सदा ही जीव पाये जाते है। एक जोवकी अपेक्षा उक्त गुणस्थानोका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। वह इस प्रकार है एक असयत सम्यग्दृष्टि सयमासयमको प्राप्त हुआ और एक अन्तर्मुहूर्त तक सयमासयमी रहकर पुन. असयत सम्यग्दृष्टी हो गया। एक सयतासयत मिथ्यादृष्टि हो गया या असयत सम्यग्दृष्टी अथवा सयमी हो गया और एक अन्तर्मुहूर्त तक वहाँ रहकर पुन सयतासयत हो गया। इसी तरह एक प्रमत्तसंयत अप्रमतसंयत होकर पुन प्रमत्तसयत हो गया। और एक अप्रमत्तसयत उपशम श्रेणीपर चढकर पुन लौटा और अप्रमत्त सयत हो गया। इसी तरह प्रत्येक उक्त गुणस्थानका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त

४२५—षट्खण्डाम, पु० ५, पृ० १४–१५।

होता है। तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन है। सो अनादि मिथ्यादृष्टि जीवको सम्यक्त्व उत्पन्न कराकर उस गुणस्थानमे भेजना चाहिये और वहाँसे च्युत कराकर पुन मिथ्यात्वमे लाकर कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन काल तक भ्रमण कराकर, पुन सम्यक्त्व उत्पन्न कराकर उस गुणस्थानमे ले जाना चाहिये। इस तरह करनेसे उत्कृष्ट अन्तरकाल निकलता है।

४२७ प्र०—उपशम श्रेणीके चारो गुणस्थानोका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवोकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है। जो इस प्रकार है—बहुतसे जीव अपूर्वकरण गुणस्थानमे गये और उसका काल समाप्त होनेपर कुछ ऊपर चढ गये, कुछ नीचे गिर गये और एक समय तक अपूर्वकरणमे कोई भी नही रहा। उसके बाद दूसरे समयमे सातवेसे चढकर और नौवेसे गिरकर अनेक जीव अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती हो गये। इस प्रकार एक समय जघन्य अन्तर हुआ इसी तरह शेष तीन गुणस्थानोका भी अन्तर जानना चाहिये। उपशम श्रेणीके चारो गुणस्थानोका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्ष पृथक्त्व है। क्योकि अधिकसे अधिक वर्ष पृथक्त्व तक कोई जीव उपशामक श्रेणीके गुणस्थानोमेसे किसी गुण-स्थानमे नही रह सकता। चारो उपशामकोका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। क्योकि एक अपूर्वकरण उपशामक जीव ऊपरके गुणस्थानोमे चढकर और वहाँसे गिरकर पुन अपूर्वकरण उपशामक हो गया। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तकाल जघन्य अन्तर हुआ, क्योकि अनिवृत्तिकरणसे लगाकर पुन अपूर्व-करण उपशामक होनेके पूर्व जो नौवे, दसवे, ग्यारहवे और पुन. ग्यारहवेसे दसवे और नौवे गुणस्थानमे आना होता है सो इन पाँचो ही गुणस्थानोका काल एकत्र करनेपर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता हे। इसी प्रकार शेष तीनो उपशामकोका भी एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल समझ लेना चाहिये। चारो उपशामकोका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन है। सो एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवको सम्यक्त्व उत्पन्न करके फिर सयमी बनाकर फिर उपशम श्रेणीके योग्य अप्रमत्त सयत बनकर उपशम श्रेणीपर चढा और वहाँसे गिरकर मिथ्यात्वमे जाकर कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन काल तक भ्रमण करके पुन सम्यग्दृष्टि हो, सयम धारण करके उपशम श्रेणीपर चढा। इस तरह करनेसे उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन होता है।

४२८. प्र०—चारो क्षपक और अयोगकेवली गुणस्थानका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवोकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छै मास है। क्योकि अधिकसे अधिक एक सौ आठ अपूर्वकरण क्षपक एक ही

समयमे सबके सब अनिवृत्तिकरण क्षपक हो गये। और एक समय के लिए एक भी जीव अपूर्वकरण क्षपक नही रहा, दूसरे समयमे पुन बहुतसे जीव अपूर्वकरण क्षपक हो गये। इस तरह जघन्य अन्तर एक समय होता है। इसी तरह एक सौ आठ अपूर्वकरण क्षपकोमेसे सबके सब एक साथ अनिवृत्तिकरण क्षपक हो गये और छै मास तक कोई भी जीव क्षपक अपूर्वकरण नही हुआ। अत उत्कृष्ट अन्तर छै मास होता है। इसी तरह शेष गुणस्थानोका भी जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर जान लेना। एक जीवकी अपेक्षा उक्त चारो क्षपकोका और अयोगकेवली गुणस्थानका अन्तर नही है क्योकि क्षपक श्रेणीवाले जीवोका पतन नही होता।

४२९. प्र०—सयोगकेवली गुणस्थानका अन्तरकाल कितना है ?

उ०—नाना जीवो तथा एक जीवोकी अपेक्षा भी सयोगकेवली गुणस्थानका अन्तर नही है, क्योकि सयोग केवलियोका कभी अभाव नही होता। तथा सयोगकेवलीसे अयोगकेवली हुए जीव पुन सयोगकेवली नही होते।

४३०. प्र०—मिथ्यादृष्टि गुणस्थान कौन-सा भाव है ?

उ०—मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण मिथ्यादृष्टि गुणस्थान औदयिक भाव है। क्योकि जो उदयसे हो उसे औदयिक कहते है।

४३१ प्र०—सासादन सम्यग्दृष्टि कौन-सा भाव है ?

उ०—आदिके चार गुणस्थानोमे जो भाव बतलाये गये है वह दर्शन मोहनीय की अपेक्षासे बतलाये गये है। इसलिये दर्शन मोहनीय कर्मके उदय, उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशमसे न होनेके कारण सासादन सम्यक्त्व पारिणामिक भाव है। क्योकि जो भाव किसी कर्मोके उदय, उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशमसे नही होता उसे पारिणामिक कहते है।

४३२. प्र०—सम्यग्मिथ्यादृष्टि कौन-सा भाव है ?

उ०—सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका उदय होनेपर श्रद्धान-अश्रद्धान रूप जो मिला हुआ जीव भाव होता है उसमे जो श्रद्धानका अश है वह सम्यक्त्वका हिस्सा है, उसे सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका उदय नष्ट नही करता। इसलिये सम्यग्मिथ्यात्व भाव क्षायोपशमिक है।

४३३ प्र० – असंयत सम्यग्दृष्टि कौन-सा भाव है ?

उ०—दर्शन मोहनीयकी उपशमसे उपशम सम्यक्त्व उत्पन्न होता है इसलिये असयत सम्यग्दृष्टि औपशमिक भाव है। दर्शन मोहनीयके क्षयसे क्षायिक सम्यक्त्व होता है, इसलिये असयत सम्यग्दृष्टि क्षायिक भाव है। सम्यक्त्व प्रकृतिके देशघाती स्पर्द्धकोके उदयके साथ रहनेवाला सम्यक्त्व क्षायोपशमिक कहलाता

है। इसलिये असयत सम्यग्दृष्टी क्षायोपशमिक भाव है। इस तरह असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे तीन भाव होते है।

४३४. प्र०—संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत कौन-सा भाव है?

उ०—चारित्र मोहनीय कर्मके उदयका क्षयोपशम होनेपर सयतासयत, प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत भाव उत्पन्न होते है इसलिये ये तीनो भाव क्षायोपशमिक है।

४३५ प्र०—अपूर्वकरण आदि चारो उपशम गुणस्थान कौन-सा भाव है?

उ०—इनमे चारित्र मोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोका उपशम होता है इसलिये चारो गुणस्थान औपशमिक भावरूप है।

४३६ प्र०—चारो क्षपक, सयोगकेवली और अयोगकेवली कौन-सा भाव है?

उ०—कर्मोको क्षय करनेके कारण और कर्मोके क्षयसे उत्पन्न होनेके कारण चारो क्षपक वगैरह क्षायिक भावरूप है।

४३७ प्र०—कर्म किसको कहते है?

उ०—जो पुद्गल स्कन्ध जीवके राग द्वेष आदि परिणामोके निमित्तसे कर्म रूपसे परिणत होकर जीवके साथ बन्धको प्राप्त होता है उसको कर्म कहते है।

४३८ प्र०—कर्मके कितने भेद है?

उ०—आठ भेद है—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय।

४३९. प्र०—ज्ञानावरण कर्म किसको कहते है?

उ०—जो जीवके ज्ञान गुणको ढाँकता है उसको ज्ञानावरण कर्म कहते है।

४४०. प्र०—दर्शनावरण कर्म किसको कहते है?

उ० जो जीवके दर्शन गुणको ढाँकता है उसको दर्शनावरण कर्म कहते है।

४४१. प्र०—वेदनीय कर्म किसको कहते हैं?

उ०—जो जीवके सुख और दु:खके अनुभवनका कारण है उसको वेदनीय कर्म कहते है।

४४२ प्र०—मोहनीय कर्म किसको कहते हैं?

उ०—जो जीवको मोहित करता है वह मोहनीय कर्म है।

४४३ प्र०—आयु कर्म किसको कहते हैं?

उ०—जिसके निमित्तसे जीव नारक आदि भवोमे जाता है तथा उसमे अमुक समय तक रुका रहता है वह आयु कर्म है।

४४४ प्र०—नाम कर्म किसको कहते हैं ?

उ०—जो शरीर आकार आदि नाना प्रकारकी रचना करता है वह नाम कर्म है।

४४५. प्र०—गोत्र कर्म किसको कहते है ?

उ०—जीवको उच्च अथवा नीच कुलमे उत्पन्न करता है वह गोत्र कर्म कहा जाता है।

४४६ प्र०—अन्तराय कर्म किसको कहते है ?

उ०—जो दान, लाभ, भोग, उपभोग आदिमे विघ्न करनेमे समर्थ है उसको अन्तराय कर्म कहते है।

४४७ प्र०—ज्ञानावरण कर्मके कितने भेद हैं ?

उ०—पाँच भेद है—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण।

४४८ प्र०—दर्शनावरण कर्मके कितने भेद है ?

उ०—नौ भेद है—निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा, प्रचला और चक्षुदर्शनावरण, अचक्षु दर्शनावरण, अवधि दर्शनावरण, केवल दर्शनावरण।

४४९ प्र०—निद्रानिद्रा किसको कहते है ?

उ०—जिसके तीव्र उदयसे जीव वृक्षकी चोटी पर भी गाढ निद्रामे सोता है उसे निद्रानिद्रा कहते है।

४५०. प्र०—प्रचलाप्रचला किसको कहते है ?

उ०—जिसके तीव्र उदयसे जीव बैठा या खडा-खडा सो जाता है, सोते हुए मुँहसे लार गिरती है, शरीर कॉपता है उसे प्रचलाप्रचला कहते है।

४५१ प्र०—स्त्यानगृद्धि किसको कहते हैं ?

उ०—जिसके तीव्र उदयसे उठाये जाने पर भी प्राणी पुन' सो जाता है, सोते हुए भी कार्य कर डालता है, बडबडाता है और दॉत किटकिटाता है उसे स्त्यानगृद्धि कहते है।

४५२. प्र०—निद्रा किसको कहते है ?

उ०—जिसके तीव्र उदयसे जीव थोडा सोता है, उठाये जाने पर जल्दी उठ

वैठता है, और थोडा-सा भी शब्द होनेसे जल्दी सचेत हो जाता है उसे निद्रा कहते है।

४५३. प्र०—प्रचला किसको कहते है ?

उ०—जिसके तीव्र उदयसे आँखे ऐसी रहती है, मानो उनमे रेत भरा है, सिर भारी रहता है और नेत्र बार-बार बन्द होते और खुलते है उसे प्रचला कहते है।

४५४ प्र०—वेदनीय कर्मके कितने भेद है ?

उ०—दो भेद है—सात वेदनीय और असात वेदनीय।

४५५. प्र०—मोहनीय कर्मके कितने भेद है ?

उ०—दो भेद है—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय।

४५६ प्र० - दर्शन मोहनीय किसको कहते है ?

उ०—देव, शास्त्र और गुरुमे रुचि अथवा श्रद्धा होनेको दर्शन या सम्यग्दर्शन कहते है। उसको जो मोहित करता है अर्थात् विपरीत कर देता है, उसको दर्शन मोहनीय कर्म कहते है। साराश यह है कि जिस कर्मके उदयसे कुदेवमे देव वुद्धि, कुशास्त्रमे शास्त्र वुद्धि और कुगुरुमे गुरुबुद्धि होती है, अथवा देव गुरु शास्त्रमे अस्थिर श्रद्धान रहता है, अथवा देव-कुदेव, शास्त्र-कुशास्त्र, गुरु-कुगुरु दोनोमे श्रद्धा होती है वह दर्शन मोहनीय है।

४५७ प्र०—दर्शन मोहनीयके कितने भेद है ?

उ०—बधकी अपेक्षा दर्शन मोहनीय कर्म एक प्रकारका है किन्तु सत्त्वकी अपेक्षा उसके तीन भेद है—सम्यक्त्व, सम्यक् मिथ्यात्व और मिथ्यात्व। क्योकि जैसे चक्कीमे दले गये कोदोके कोदो, चावल और कन इस प्रकार तीन विभाग हो जाते है वैसे ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व होनेके समय अपूर्वकरण आदि परिणामोके द्वारा दले गये दर्शन मोहनीय कर्मके तीन भेद हो जाते है।

४५८ प्र०—सम्यक्त्व प्रकृति किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे देव शास्त्र वगैरहकी श्रद्धामे शिथिलता आती है वह सम्यक्त्व प्रकृति है।

४५९. प्र०—सम्यक्त्व प्रकृतिका 'सम्यक्त्व' यह नाम क्यो है ?

उ०—इसका उदय सम्यग्दर्शनका सहचारी है इसलिये इसे उपचारसे 'सम्यक्त्व' कहते है।

४६०. प्र०—सम्यक् मिथ्यात्व किसको कहते है ?

उ०—जिसके उदयसे एक साथ देव-कुदेव, शास्त्र-कुशास्त्र और गुरु-कुगुरुमे श्रद्धा होती है वह सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति है।

४६१ प्र०—मिथ्यात्वकर्म किसे कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे देव शास्त्र गुरुमे अश्रद्धा होती है वह मिथ्यात्व-कर्म है।

४६२. प्र०—चारित्र मोहनीय कर्म किसको कहते है ?

उ०—पापके कार्योका त्यागकर देनेको चारित्र् कहते है। उस चारित्रको जो मोहित करता है अर्थात् ढाकता है, उसे चारित्र मोहनीय कर्म कहते है।

४६३. प्र०—चारित्र मोहनीयके कितने भेद है ?

उ०—दो भेद है—कषाय वेदनीय और नोकपाय वेदनीय। कपाय वेदनीयके सोलह भेद हैं—अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ और सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ। तथा नोकपाय वेदनीयके नौ भेद है—स्त्रीवेद, पुरुपवेद, नपुसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा।

४६४. प्र०—अनन्तानुवन्धी क्रोध मान माया लोभ किसको कहते है ?

उ०—अनन्त भवोको बाँधना ही जिसका स्वभाव है ऐसे क्रोध मान माया लोभको अनन्तानुवन्धी क्रोध मान माया लोभ कहते है। साराश यह है कि इन कषायोका सस्कार अनन्त भवो तक माना गया है। ये चारो ही कषाय सम्यक्त्व और चारित्र दोनोको घातती है।

४६५. प्र०—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ किसको कहते है ?

उ०—अप्रत्याख्यान सयमासयम या देश चारित्रको कहते है। उसको जो आवरण करता है उसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ कहते है ?

४६६ प्र०—प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ किसको कहते है ?

उ०—प्रत्याख्यान कहते है सयम अथवा महाव्रतको। उसको जो आवरण करते है वे प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध मान माया लोभ कहलाते है।

४६७. प्र०—संज्वलन क्रोध मान माया लोभ किसको कहते है ?

उ०—जो कषाय चारित्रका घात तो नही करती किन्तु यथाख्यात चारित्रको उत्पन्न नही होने देती उसको सज्वलन क्रोध मान माया लोभ कहते है।

४६८ प्र०—नोकषाय किसको कहते है ?

उ०—ईषत् कषायको नोकषाय कहते है।

४६९ प्र०—नोकषायोंका क्या स्वरूप है ?

उ०—जिसके उदयसे पुरुपकी आकाक्षा उत्पन्न होती है उसको स्त्रीवेद कहते है। जिसके उदयसे स्त्रीके प्रति आकाक्षा उत्पन्न होती है उसको पुरुपवेद कहते है और जिसके उदयसे स्त्री और पुरुष दोनोके प्रति आकाक्षा हो वह नपुसकवेद है। जिसके उदयसे जीवमे हास्य निमित्तक राग उत्पन्न होता है उस कर्मस्कन्धको हास्य कहते है। जिसके उदयसे जीवमे राग भाव उत्पन्न होता है उसको रति कहते है। जिसके उदयसे जीवमे किसीके प्रति अरुचि उत्पन्न होती है उसको अरति कहते है। जिसके उदयसे जीवके शोक उत्पन्न होता है उसको शोक कहते है। जिसके उदयसे जीवके भय उत्पन्न होता है, उसको भय कहते है। जिसके उदयसे ग्लानि उत्पन्न होती है उसको जुगुप्सा कहते है। ये सब नोकषाय है।

४७० प्र०—आयु कर्मके कितने भेद है ?

उ०—चार भेद है—नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और देवायु। जिसके उदयसे जीवको नारक भवमे ठहरना पड़े उसे नरकायु कहते है। जिसके उदयसे जीवको तिर्यञ्च भवमे ठहरना पडे उसे तिर्यञ्चायु कहते है। इसी प्रकार मनुष्यायु और देवायुका स्वरूप जानना।

४७१. प्र०—नाम कर्मके कितने भेद है ?

उ०—तिरानबे—चार गतिनाम (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव) पॉच जाति नाम (एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय,) पॉच शरीर नाम (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण), पाँच शरीर बन्धन नाम (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण), पॉच शरीरसघात नाम (औदारिक, वैक्रियिक वगैरह) छै शरीरसस्थान नाम (समचतुरस्र शरीर सस्थान, न्यग्रोध परिमण्डल शरीर सस्थान, स्वाति शरीर सस्थान, कुब्ज शरीर सस्थान, वामन शरीर सस्थान, हुण्डक शरीर सस्थान नाम), तीन शरीर अगोपाग नाम (औदारिक शरीर अगोपाग नाम, वैक्रियिक शरीर अगोपाग नाम, आहारक शरीर अगोपाग नाम), छै शरीर सहनन नाम (वज्रऋषभ नाराच शरीर सहनन, वज्र नाराच शरीर सहनन, नाराच शरीर सहनन, अर्धनाराच शरीर सहनन, कीलक शरीर सहनन और असप्राप्तासृपाटिका शरीर सहनन), पाँच वर्णनाम (कृष्ण, नील, रुधिर, पीत, शुक्ल वर्णनाम), दो गध नाम (सुगन्ध दुर्गन्ध), पॉच रस नाम (तिक्त, कटुक, कसैला, खट्टा, मीठा नाम), आठ स्पर्श नाम (कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, स्निग्ध, सूक्ष्म, शीत और उष्ण नाम कर्म), चार आनुपूर्वी नाम (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव), एक अगुरु लघु नाम, एक उपघात नाम, एक परघात नाम, एक उछ्वास नाम, एक आताप नाम, एक उद्योत नाम,

दो विहायोगति नाम (प्रशस्त और अप्रशस्त), एक त्रस नाम, एक स्थावर नाम, एक वादर नाम, एक सूक्ष्म नाम, एक पर्याप्त नाम, एक अपर्याप्त नाम, एक प्रत्येक शरीर नाम, एक साधारण शरीर नाम, एक स्थिर नाम, एक अस्थिर नाम, एक शुभ नाम, एक अशुभ नाम, एक सुभग नाम, एक दुर्भग नाम, एक सुस्वर नाम, एक दुस्वर नाम, एक आदेय नाम, एक अनादेय नाम, एक यश कीर्ति नाम, एक अयश.कीर्ति नाम, एक निर्माण नाम और एक तीर्थंकर नाम।

४७२. प्र०—गति नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—आयु कर्मके उदयसे जिस भावमे अवस्थित होनेपर शरीर आदि कर्म उदयको प्राप्त होते है, वह भाव जिस कर्मके उदयसे होता है उसको गति नाम कर्म कहते है। उसके चार भेद है। जिस कर्मके उदयसे जीवोके नारक भाव होता है वह नरक गति कर्म है। इसी प्रकार शेप भेदोका भी अर्थ जानना।

४७३. प्र०—जाति नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—जीवोके सदृश परिणामको जाति कहते है। अत जिस कर्मके उदयसे जीवोमे अत्यन्त सदृशता उत्पन्न होती है उसको जाति नामकर्म कहा जाता है। उसके पॉच भेद है—जिस कर्मके उदयसे एकेन्द्रिय जीवोकी एकेन्द्रिय जीवोके साथ एकेन्द्रिय भावसे सदृशता होती है वह एकेन्द्रिय जाति नामकर्म हे। उसके भी अनेक भेद है। इसी प्रकार दोइन्द्रिय जाति नाम आदिके विषयमे भी जानना।

४७४ प्र०—शरीर नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे आहार वर्गणाके पुद्गल स्कन्ध तथा तैजस और कार्मण वर्गणाके पुद्गल स्कन्ध शरीर योग्य परिणामोके द्वारा परिणत होते हुए जीवके साथ सम्बद्ध होते है, उसको शरीर नामकर्म कहते है। उसके पॉच भेद है—जिस कर्मके उदयसे आहार वर्गणाके पुद्गल स्कन्ध औदारिक शरीर रूपसे परिणत होते है उसे औदारिक शरीर नामकर्म कहते है। जिस कर्मके उदयसे आहार वर्गणाके पुद्गल स्कन्ध वैक्रियिक शरीर रूपसे परिणत होते है उसे वैक्रियिक शरीर नामकर्म कहते है। इसी प्रकार शेष भेदोका भी स्वरूप जानना।

४७५ प्र०—शरीर बन्धन नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिसके उदयसे शरीरके लिये आये हुए पुद्गल स्कन्धोका परस्पर बन्ध होता है उसको शरीर बन्धन नामकर्म कहते है।

४७६ प्र०—शरीर संघात नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिसके उदयसे शरीर सम्बन्धी पुद्गल स्कन्धोका छिद्र रहित सश्लेष होता है उसको शरीर सघात नामकर्म कहते है।

४७७ प्र०—शरीर संस्थान नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिसके उदयसे शरीरका आकार बनता है वह शरीर सस्थान नामकर्म है।

४७८. प्र०--समचतुरस्र संस्थान नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—समान चतुरस्र अर्थात् ऊपर नीचे और मध्यमे समभागको समचतुरस्र कहते है। जिस कर्मके उदयसे जीवोके समचतुरस्र सस्थान होता है उसको समचतुरस्र सस्थान नामकर्म कहते है।

४७९ प्र०--न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—न्यग्रोध बडके वृक्षको कहते है। उसके परिमण्डलके समान परिमण्डल जिस शरीरका होता है उसे न्यग्रोध परिमण्डल कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे शरीरका आकार न्यग्रोध परिमण्डल रूप होता है उसे न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान नामकर्म कहते है।

४८० प्र०--स्वाति संस्थान नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—स्वाति नाम वामीका है। जिस कर्मके उदयसे शरीरका आकार वामीके समान हो अर्थात् नाभिसे नीचे विशाल और ऊपर हीन हो उसे स्वाति सस्थान नामकर्म कहते है।

४८१. प्र०—कुब्जक सस्थान नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—कुबडे शरीरको कुब्जक कहते है। जिस कर्मके उदयसे कुबडा शरीर हो उसे कुब्जक सस्थान नामकर्म कहते है।

४८२ प्र०—वामन संस्थान नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—बौने शरीरको वामन कहते है। जिस कर्मके उदयसे बौना शरीर हो वह वामन सस्थान नामकर्म है।

४८३. प्र०—हुण्डक संस्थान नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—विषम आकारको हुण्ड कहते है। जिस कर्मके उदयसे शरीरका आकार पूर्वोक्त पाँच आकारोसे भिन्न एक विचित्र ही प्रकारका हो उसे हुण्डक सस्थान नामकर्म कहते है।

४८४ प्र०—शरीर अगोपांग नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे शरीरके अग और उपागोकी रचना होती है। उसके तीन भेद है—जिस कर्मके उदयसे औदारिक शरीरके अग उपाग उत्पन्न हो वह औदारिक शरीर अगोपांग नामकर्म है। इसी प्रकार शेष दो का भी अर्थ कहना चाहिये।

४८५ प्र०—शरीरमे अंग उपांग कौनसे है ?

उ०—शरीरमे दो पैर, दो हाथ, एक नितम्ब, पीठ, हृदय और मस्तक ये आठ अग होते हे। इनके सिवाय अन्य उपाग होते है—जैसे ललाट, भौ, कान, नाक, ऑख, तालु, जीभ वगैरह।

४८६ प्र०—संहनन नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे शरीरमे हड्डी और उसकी सन्धियोकी रचना हो ?

४८७ प्र०—वज्रऋषभ नाराच शरीर संहनन नामकर्म किसको कहते हैं ?

उ०—हड्डियोके सचयको सहनन और वेष्टनको ऋषभ कहते है। जिस कर्मके उदयसे वज्रमय हड्डियाॅ वज्रमय वेष्टनसे वेष्टित और वज्रमय नाराचसे कीलित होती है।

४८८. प्र०—वज्रनाराच संहनन नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे पूर्वोक्त अस्थिबन्धन ही वज्रमय वेष्टनसे रहित हो।

४८९ प्र०—नाराच संहनन नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे नाराच अर्थात् कीले सहित हाड़ हो किन्तु वज्रमय न हो।

४९०. प्र०—अर्धनाराच संहनन नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे हाडोकी सन्धियाॅ नाराचसे आधी विधी हुई हो।

४९१ प्र०—कीलक संहनन नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे हड्डियाॅ परस्परमे कीलित हो वह कीलक सहनन नामकर्म है।

४९२ प्र०—असंप्राप्तासृपाटिका संहनन नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जुदे-जुदे हाड शिराओसे बॅधे हुए हो।

४९३. प्र०—वर्ण नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमे अपनी जातिके अनुसार नियत काले-पीले आदि वर्णकी उत्पत्ति हो।

४९४ प्र०—गन्ध नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमे अपनी जातिके अनुसार नियत गन्ध उत्पन्न होती है।

४९५. प्र०—रस नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमे अपनी जातिके अनुसार नियत तिक्त आदि रस उत्पन्न हो।

४९६. प्र०—स्पर्श नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमे अपनी जातिके अनुसार नियत स्पर्श उत्पन्न होता है।

४९७ प्र०—आनुपूर्वी नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जन्मसे पहले और मरणके पीछे बीचके एक दो और तीन समयमे अर्थात् विग्रह गतिमे वर्तमान जीवके प्रदेशोका आकार, मरणसे पहलेके शरीरके आकार होता है।

४९८. प्र०—सस्थान नामकर्म और आनुपूर्वी नामकर्ममें क्या अन्तर है ?

उ०—सस्थान नामकर्मका उदय शरीर ग्रहणके प्रथम समयसे होता है और आनुपूर्वीका उदय विग्रह गतिमे होता है। आनुपूर्वीके उदयसे ही जीव इच्छित गतिमे जाता है। विग्रह गतिमे आकार विशेष बनाये रखना और इच्छित गतिमे गमन कराना ये दोनो ही आनुपूर्वीके कार्य है।

४९९. प्र०—अगुरु लघु नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर न तो लोहेके गोलेके समान भारी हो और न आककी रुईकी तरह हल्का हो।

५००. प्र०—उपघात नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवको पीडा देनेवाले अवयव हो, जैसे बारहसीगेके सीग।

५०१. प्र०—परघात नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे परका घात करनेवाले अवयव हो। जैसे साँपकी दाढ मे विष, बिच्छूके डक, सिहके नख दन्त आदि।

५०२. प्र०—उछ्वास नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव उछ्वास और नि श्वास लेनेमे समर्थ होता है।

५०३ प्र०—आताप नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमे आताप होता है। जैसे पृथिवीकायिक जीवोके शरीर रूप सूर्य मण्डलमे आताप पाया जाता है।

४९८—षट्खण्डागम, पु० ६, पृ० ५६-५७।

५०४. प्र०—उद्योत नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमे उद्योत उत्पन्न होता है। जैसे चन्द्र, खद्योत वगैरहके शरीरमे उद्योत पाया जाता है।

५०५ प्र०—विहायोगति नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—विहायस् नाम आकाशका है। जिस कर्मके उदयसे जीवका आकाशमे गमन हो उसको विहायोगति नामकर्म कहते है।

५०६ प्र०—तिर्यञ्च और मनुष्योका भूमिपर गमन किस कर्मके उदयसे होता है ?

उ०—विहायोगति नामकर्मके उदय से।

५०७ प्र०—त्रस नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे दोइन्द्रिय आदि पर्याय हो।

५०८ प्र०—स्थावर नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव स्थावर पर्यायको प्राप्त हो।

५०९. प्र०—बादर नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव बादरकाय वालोमे उत्पन्न हो।

५१० प्र०—सूक्ष्म नाककर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव सूक्ष्मताको प्राप्त हो।

५११ प्र०—पर्याप्त नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव पर्याप्त होता है।

५१२ प्र०—अपर्याप्त नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव पर्याप्तियोको समाप्त करनेमे समर्थ नही होता।

५१३ प्र०—प्रत्येक शरीर नामकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव प्रत्येक शरीर होता है, अर्थात् एक शरीरमे एक ही जीव पाया जाता है।

५१४ प्र०—साधारण शरीर-नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव साधारण शरीर वाला होता है।

५१५. प्र०—स्थिर नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे रस, रुधिर, आदि धातुएँ स्थिर हो, उनका विनाश न हो।

५१६ प्र०—अस्थिर नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे रस रुधिर आदि धातुएँ अस्थिर हो।

५१७ प्र०—शुभ नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे अग और उपाग रमणीय होते है।

५१८. प्र०—अशुभ नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे अग और उपाग सुन्दर न हो।

५१९ प्र०—सुभग नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—सौभाग्यको उत्पन्न करनेवाले कर्मको सुभग नाम कर्म कहते है।

५२० प्र०—दुर्भग नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—दुर्भाग्य को उत्पन्न करनेवाले कर्मको दुर्भग नाम कर्म कहते है।

५२१. प्र०—सुस्वर नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवोका मधुर स्वर होता है।

५२२. प्र०—दुस्वर नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीवोके वुरा स्वर होता है।

५२३ प्र०—आदेय नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव आदेय होता है, अर्थात् बहुमान्य होता है।

५२४. प्र०—अनादेय नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव अनादरणीय होता है।

५२५ प्र०—यश.कीर्ति नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—यश नाम गुणका है। उसके प्रकट करने को कीर्ति कहते है। जिस कर्मके उदयसे लोगोके द्वारा विद्यमान अथवा अविद्यमान भी गुणोको प्रकट किया जाता है। वह यशस्कीर्ति नाम कर्म हे।

५२६ प्र०—अयशःकीर्ति कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे लोगोके द्वारा विद्यमान अथवा अविद्यमान दुर्गुणोको प्रकट किया जाता है उसको अयशःकीर्ति नाम कर्म कहते है।

५२७. प्र०—निर्माण नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—नियत मानको निर्माण कहते है। उसके दो भेद है—प्रमाण निर्माण और स्थान निर्माण। जघा, सिर, हाथ वगैरह अवयवोके प्रमाणके नियामक कर्मको

प्रमाण निर्माण कर्म कहते है। और कान, आँख, नाक आदि अंगोका अपने-अपने स्थान पर नियामक जो कर्म हो उसको स्थाननिर्माण नाम कर्म कहते है।

५२८. प्र०—तीर्थङ्कर नाम कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिस कर्मके उदयसे जीव त्रिलोकमे पूज्य होता है।

५२९. प्र०—गोत्र कर्मके कितने भेद है ?

उ०—दो। उच्चगोत्र और नीचगोत्र।

५३० प्र०—अन्तरायकर्मके कितने भेद है ?

उ०—पाँच भेद है—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय। जिस कर्मके उदयसे दानमे, लाभमे, भोगमे, उपभोगमे और वीर्यमे विघ्न होता है उसे क्रमशः दानान्तराय लाभान्तराय आदि कहते है।

११

५३१ प्र०—कर्मोकी कितनी अवस्थाएँ होती है ?

उ०—कर्मो की दस अवस्थाएँ होती है—बन्ध, सत्ता, उदय, उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, निधत्ति और निकाचना। इन्हीको दस करण कहते है।

५३२ प्र०—बन्ध किसको कहते है ?

उ०—नवीन कर्म पुद्गलोके आत्माके साथ बधने को बन्ध कहते हैं।

५३३ प्र०—बन्धके कितने भेद है ?

उ०—बन्धके चार भेद है—प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभाग-बन्ध।

५३४. प्र०—प्रकृतिबन्ध किसको कहते हैं।

उ०—कर्म रूप होने योग्य पुद्गलों का ज्ञानावरण आदि मूल प्रकृति रूप और उनके भेद उत्तर प्रकृति रूप परिणमन होनेका नाम प्रकृतिबन्ध है।

५३५ प्र०—प्रकृतिबन्धके कितने भेद है ?

उ० प्रकृतिबन्धके दो भेद है—मूल प्रकृतिबन्ध और उत्तर प्रकृतिबन्ध। मूल प्रकृतिबन्धके ज्ञानावरण आदि आठ भेद है और उनके जितने प्रभेद है उतने ही उत्तर प्रकृतिबन्धके भेद है।

५३६ प्र०—प्रदेशबन्ध किसको कहते है ?

उ०—प्रति समय एक जीवके जितने पुद्गल परमाणु कर्मरूप परिणमन करते है उनके प्रमाणको प्रदेशबन्ध कहते है।

५३७. प्र०—एक समयसे एक जीवके कितने कर्मपरमाणु बँधते है ?

उ०—प्रति समय एक जीवके एक समय प्रबद्धका बन्ध होता है।

५३८ प्र०—समयप्रबद्धका स्वरूप और उसका प्रमाण क्या है ?

उ०—अभव्यराशिसे अनन्तगुने और सिद्धराशिके अनन्तवें भाग परमाणुओकी एक कार्मण वर्गणा होती है। और उतनी ही कार्मण वर्गणाओका एक समयप्रबद्ध होता है। प्रति समय एक जीवके इतने कर्मपरमाणु बँधते है इसीसे इसे समयप्रबद्ध कहते है। यह एक साधारण प्रमाण है। योगकी तीव्रता अथवा मन्दताके अनुसार समयप्रबद्धमे परमाणुओका प्रमाण बढता घटता रहता है।

५३९ प्र०—समयप्रबद्धके विभागका क्या क्रम है ?

उ०—एक समयमे ग्रहण किया गया समयप्रबद्ध यथायोग्य मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतिरूप परिणमन करता है। सबसे कम भाग आयु कर्मरूप परिणमन करता है, उससे अधिक भाग दो भागोमे समान रूपसे विभाजित होकर नामकर्म और गोत्रकर्मरूप परिणमन करता है। उन दोनो कर्मोके भागसे अधिक भाग तीन भागोमे बराबर-बराबर विभाजित होकर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मरूप परिणमन करता है। इन तीनो कर्मोको मिलने वाले भागसे भी अधिक भाग मोहनीय कर्मरूप परिणमन करता है और मोहनीयसे भी अधिक भाग वेदनीय कर्मको मिलता है। आयु, गोत्र और वेदनीयको छोडकर शेष पाँच कर्मोको जो भाग मिलता है वह उनकी उत्तर प्रकृतियोमे यथायोग्य विभाजित हो जाता है।

५४०. प्र०—स्थितिबन्ध किसको कहते है ?

उ०—कर्मरूप परिणत हुए स्कन्धोमे आत्माके साथ ठहरनेकी मियादके बँधनेको स्थितिबन्ध कहते है।

५४१. प्र०—कर्मोका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना है ?

उ०—पांचों ज्ञानावरण, नवों दर्शनावरण, पांचों अन्तराय और वेदनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। नाम और गोत्रकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। और आयुकर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तेतीस सागर प्रमाण है।

५४२ प्र०-मोहनीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना है ?

उ०—मिथ्यात्व कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चालीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। पुरुषवेद, हास्य और रतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध दस कोड़ाकोड़ी सागर है। नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्साका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध बीस कोड़ाकोड़ी सागर है। और स्त्रीवेदका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है।

५४३. प्र०—नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना है ?

उ०—मनुष्य गति, मनुष्यगत्यानुपूर्वीका पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागर, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, समचतुरस्र संस्थान, वज्रर्षभ नाराच संहनन, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश कीर्तिका दस कोड़ाकोड़ी सागर, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक वैक्रियिक तैजस कार्मण शरीर, औदारिक और वैक्रियिक अंगोपांग, हुण्डक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरु लघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त प्रत्येक शरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयश:कीर्ति और निर्माण कर्मका बीस कोड़ाकोड़ी सागर, दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रियजाति, वामन संस्थान कीलक संहनन, सूक्ष्म अपर्याप्त और साधारण नामकर्मका अठारह कोड़ाकोड़ी सागर, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग और तीर्थङ्कर नामका अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर, न्यग्रोध परिमण्डल सस्थान और वज्रनाराच संहननका बारह कोड़ाकोड़ी सागर, स्वाति संस्थान और नाराच संहननका चौदह कोड़ाकोड़ी सागर, स्वाति सस्थान और अर्द्धनाराच सहननका सोलह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है।

५४४ प्र०--वेदनीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियोका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना है ?

उ०—असाता वेदनीयका तीस कोड़ाकोड़ी सागर और साता वेदनीयका पन्द्रह कोडाकोडी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बन्ध होता है।

५४५. प्र०—आयु कर्मके भेदोका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना है ?

उ०—नरकायु और देवायुका उत्कृष्ट स्थिति बन्ध तेतीस सागर और तिर्यञ्चायुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीन पल्योपम होता है।

५४६ प्र०—गोत्रकर्मके भेदोका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना है ?

उ०—उच्च गोत्रका दस कोडाकोड़ी सागर और नीच गोत्रका बीस कोडाकोडी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है।

५४७ प्र०—यह उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किसके होता है ?

उ०—सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीवके होता है।

५४८. प्र०—कर्मोका जघन्य स्थितिबन्ध कितना है ?

उ०—पाँचो ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, मोहनीय, आयु और पाँचो अन्तरायोका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त है। नाम और गोत्र कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध आठ मुहूर्त प्रमाण है और वेदनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध बारह मुहूर्त प्रमाण है।

५४९ प्र०—यह जघन्य स्थितिबन्ध किसके होता है ?

उ०—मोहनीय कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध अनिवृत्ति बादर साम्पराय नामक नौवे गुण स्थानमे, आयु कर्मका जघन्य स्थितिबन्ध कर्मभूमिया मनुष्य तिर्यञ्चोमे और शेष कर्मोका जघन्य स्थितिबन्ध सूक्ष्म साम्पराय नामक दसवे गुणस्थानमे होता है।

५५०. प्र०—एक समयमे बंधे हुए सभी पुद्गल परमाणुओकी स्थिति क्या समान होती है ?

उ०—एक समयमे जो स्थितिबन्ध होता है उसमे बन्ध समयसे लगाकर आबाध काल पर्यन्त तो बन्धे हुए परमाणुओका उदय नही होता। आबाधा काल बीतने पर प्रथम समयसे लेकर बन्धी हुई स्थितिके अन्त समय पर्यन्त प्रत्येक समयमे एक-एक निषेकका उदय होता है। अत प्रथम निषेककी स्थिति एक समय अधिक आबाधाकाल मात्र होती है, दूसरे निषेककी स्थिति दो समय अधिक आबाधाकाल मात्र होती है, इस तरह क्रमसे एक-एक समय बढते-बढते अन्तके निषेकसे पहले निषेककी स्थिति एक समय कम स्थितिबन्ध प्रमाण है और अन्तिम निषेककी स्थिति सम्पूर्ण स्थितिबन्ध प्रमाण है। जैसे मोहनीय कर्मकी सत्तर कोडाकोड़ी सागरकी स्थिति बन्धी। उसमेसे सात हजार वर्ष तो आबाधाकाल है। अतः प्रथम निषेककी स्थिति एक समय अधिक सात हजार

वर्ष है। दूसरे आदि निषेकोकी स्थिति क्रमसे एक-एक समय बढते-बढते अन्तिम निषेककी स्थिति सत्तर कोडाकोडी सागर होती है।

५५१ प्र०—आबाधाकाल किसे कहते है ?

उ०—कर्मका बन्ध होनेके पश्चात् जबतक वह कर्म उदय अथवा उदीरणा अवस्थाको प्राप्त नही होता, उतने कालको आबाधाकाल कहते है।

५५२ प्र०—आबाधाकालका क्या नियम है ?

उ०—उदयकी अपेक्षा आयुकर्मके सिवाय शेष सात कर्मोकी आबाधा एक कोडाकोडी सागरकी स्थितिमे सौ वर्ष प्रमाण होती है। अत. जिस कर्मकी स्थिति सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण बँधती है, उसका आबाधाकाल सात हजार वर्ष है। जिस कर्मकी स्थिति चालीस कोडाकोड़ी सागर है उसकी आबाधा चार हजार वर्ष है। जिसकी स्थिति तीस कोडाकोडी सागर है उसका आबाधाकाल तीन हजार वर्ष है। इसी तरह सब कर्मोकी स्थितिमे आबाधाकाल जानना। जिस कर्मकी स्थिति अन्त कोडाकोडी सागर है उसका आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त है।

५५३. प्र०—आयु कर्मकी आबाधाका क्या नियम है ?

उ०—आयु कर्मकी आबाधा अन्य कर्मोकी तरह स्थितिबन्धके अनुसार नही होती। इसीसे आयुके स्थितिबन्धमे आबाधाकाल नही गिना जाता, क्योकि आयुका आबाधाकाल पूर्व पर्यायमे ही बीत जाता है। अत: आयु कर्मके प्रथम निषेककी स्थिति एक समय, दूसरे निषेककी दो समय, इस तरह क्रमसे बढते-बढते अन्तिम निषेककी स्थिति सम्पूर्ण स्थितिबन्ध प्रमाण होती है।

५५४ प्र०—आयु कर्मका आबाधाकाल कितना है ?

उ०—आयु कर्मका बन्ध अन्य कर्मोकी तरह सदा नही होता। देव और नारकियोके छै महीने आयु शेष रहने पर और भोगभूमिया जीवोके नौ महीना आयु शेष रहने पर उसके त्रिभागमे आयु कर्मका बन्ध होता है। कर्मभूमिया मनुष्य तिर्यञ्चोके अपनी सम्पूर्ण आयुके त्रिभागमे आयु कर्मका बन्ध होता है। सो कर्मभूमिया जीवकी उत्कृष्ट आयु एक कोटी पूर्व होती है अत: एक कोटी पूर्वका त्रिभाग आयु कर्मका उत्कृष्ट आबाधाकाल है। त्रिभागके द्वारा आठ अपकर्ष कालोमे आयुकर्मका बन्ध होता है। किन्तु यदि किसी भी अपकर्ष कालमे आयु नही बँधती तो किन्ही आचार्यके मतसे एक आवलीके असख्यातवे भाग और किन्ही आचार्यके मतसे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयुके अवशेष रहने पर उत्तर भवकी आयुका बन्ध होता है। अत आयु कर्मका जघन्य आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त अथवा आवलीका असंख्यातवाँ भाग होता है।

५५५ प्र०—अपकर्षकाल किसे कहते है ?

उ०—वर्तमान आयुको अपकृष्य अर्थात् घटा-घटाकर आगामी परभवकी आयु जिस कालमे बधे उसे अपकर्ष काल कहते है। जैसे, किसी कर्मभूमिया मनुष्यकी आयु इक्यासो वर्ष है। उस आयुके दो भाग बीतने पर जब सत्ताईस वर्षकी आयु शेष रहती है तो तीसरे भागके लगते ही प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त प्रथम अपकर्ष काल होता है उसमे परभवकी आयुका वन्ध होता है। यदि न बँधे तो उसके भी दो भाग बीतने पर जब नौ वर्षकी आयु शेष रहती है तब अन्तर्मुहूर्तके लिये दूसरा अपकर्षकाल आता है। उसमे भी आयु न बँधे तो तीन वर्षकी आयु शेष रहने पर तीसरे अपकर्ष कालमे आयु बँधती है। उसमे भी न बँधे तो एक वर्ष आयु शेष रहने पर चौथे अपकर्ष कालमे आयु बँधती है। इस तरह भुज्यमान आयु का जितना प्रमाण हो उसके त्रिभाग त्रिभागमे आठ अपकर्षकाल होते है। आयुबधके योग्य परिणाम इन अपकर्ष कालोमे ही होते है। किन्तु ऐसा कोई नियम नही है कि इन अपकर्षोमे आयुका वध होना ही चाहिये। बन्ध होना हो तो होता है, न होना हो तो नही होता।

५५६. प्र०—निषेक किसको कहते है ?

उ०—एक समयमे जितने कर्मपरमाणु उदयमे आयें उनके समूहको निषेक कहते है।

५५७ प्र०—अनुभागबन्ध किसको कहते हैं ?

उ०—जैसे भाजन वगैरहके निमित्तसे पुष्प वगैरह मदिरा रूप हो जाते है, उसमे ऐसी शक्ति हो जाती है कि उसके पीनेसे पुरुषको थोडा या बहुत नशा हो आता है। वैसे ही रागादिके निमित्तसे जो पुद्गल कर्मरूप होते हैं उनमे ऐसी शक्ति होती है जिससे उदयकाल आनेपर वे जीवके ज्ञानादि गुणोका थोडा या बहुत घात करते है। बन्ध होते समय कर्ममे ऐसी शक्तिके पड़नेका नाम ही अनुभागबध है।

५५८ प्र०—अविभागी प्रतिच्छेद किसको कहते है ?

उ०—शक्तिके अविभागी अशको अविभागी प्रतिच्छेद कहते है।

४५९. प्र०—वर्ग किसको कहते हैं ?

उ०—अविभागी प्रतिच्छेदोके समूहको वर्ग कहते है। चूंकि प्रत्येक परमाणुमे अनेक अविभागी प्रतिच्छेद होते है इसलिये प्रत्येक परमाणु एक वर्ग है।

५६० प्र०—जघन्य वर्ग किसको कहते है ?

उ०—थोडे अनुभाग वाले परमाणुको जघन्य वर्ग कहते हैं।

५६१. प्र०—वर्गणा किसको कहते है ?

उ०—समान अविभागी प्रतिच्छेदोसे युक्त वर्गोके समूहको वर्गणा कहते है।

५६२. प्र०—जघन्य वर्गणा किसको कहते हैं ?

उ०—जघन्य वर्गोके समूहको जघन्य वर्गणा कहते है।

५६३ प्र०—द्वितीय वर्गणा किसको कहते है ?

उ०—जघन्य वर्गसे एक अधिक अविभागी प्रतिच्छेदोसे युक्त वर्गोके समूहको द्वितीय वर्गणा कहते है।

५६४. प्र० – स्पर्द्धक किसको कहते हैं ?

उ०—उक्त प्रकारसे एक-एक अविभागी प्रतिच्छेद अधिक वर्गोके समूह रूप वर्गणा जहाँ तक उपलब्ध हो, उन सब वर्गणाओके समूहको स्पर्द्धक कहते है।

५६५ प्र०—द्वितीय स्पर्द्धक किसको कहते है ?

उ० - प्रथम स्पर्द्धकके ऊपर क्रमसे एक-एक अविभागी प्रतिच्छेद अधिकवाले वर्गोके समूह वर्गणा जब तक उपलब्ध हो, उन सब वर्गणाओके समूहको द्वितीय स्पर्द्धक कहते है।

५६६ प्र०—गुणहानि किसको कहते हैं ?

उ० स्पर्द्धकोके समूहको गुणहानि कहते है।

५६७ प्र०—गुणहानि आयाम किसको कहते हैं ?

उ —एक गुणहानिके समयोके समूहको गुणहानि आयाम कहते हैं।

५६८ प्र०—नाना गुणहानि किसको कहते है ?

उ० -गुणहानिके प्रमाणको नाना गुणहानि कहते है।

५६९. प्र०—अन्योन्याभ्यस्तराशि किसको कहते है ?

उ०—नाना गुणहानि प्रमाण दुए रखकर उन्हे परस्परमे गुणनेसे जो प्रमाण होता है उसे अन्योन्याभ्यस्तराशि कहते है।

५७० प्र०—स्थिति रचनाकी अपेक्षा निषेकोमे द्रव्यका प्रमाण लानेकी विधि क्या है ?

उ०—जैसे; किसी जीवने एक समयमे तिरसठ सौ परमाणुओके समूहरूप समय-प्रबद्धका बध किया और उसमे ४८ समयकी स्थिति पड़ी। गुणहानि ८, नाना-गुणहानि ६, अन्योन्याभ्यस्तराशि ६४ स्थापन करके सर्व द्रव्यको साधिक डेढ़ गुणहानिका भाग देने पर-प्रथम निषेकका द्रव्य आता है। जैसे,- तिरसठ सौ को

साधिक बारहका भाग देनेसे ५१२ आते है। प्रथम निषेकको दो गुणहानिका भाग देनेसे चयका प्रमाण आता है। जैसे ५१२ को १६ का भाग देनेसे ३२ आता है यह चय है। सो द्वितीय आदि निषेकोका द्रव्य एक-एक चय घटता जानना। जैसे ५१२, ४८०, ४४८, ४१६, ३८४, ३५२, ३२०, २२८। इस तरह घटते-घटते जिस निषेकमे प्रथम निषेकसे आधा द्रव्य पाया जाये वहाँसे दूसरी गुणहानि प्रारम्भ होती है। जैसे दूसरो गुणहानिके प्रथम निपेकका द्रव्य २५६ है। यहाँ चय का प्रमाण प्रथम गुणहानिसे आधा है अर्थात् १६ है। सो यहाँ भी द्वितीय आदि निषेकोका द्रव्य क्रमसे एक-एक चय घटता हुआ जानना। जैसे, २५६, २४०, २२४, २०८, १९२, १७६, १६०, १४४। इस प्रकार प्रथम गुणहानिसे द्वितीय गुणहानिका द्रव्य और चयका प्रमाण जैसे आधा होता है वैसे ही तृतोय आदि गुणहानियोमे अपनेसे पूर्व पूर्वकी गुणहानियोसे द्रव्य और चयका प्रमाण क्रमसे आधा आधा होता जाता है। इस तरह नाना गुणहानि प्रमाण ६ गुण हानियोमे निषेकोके द्रव्यका प्रमाण लाना चाहिये। जैसे तीसरी गुणहानिमे १२८, १२०, ११२, १०४, ९६, ८८, ८०, ७२। चौथी गुणहानिमे ६४, ६०, ५६, ५२, ४८, ४४, ४०, ३६। पाँचवीमे ३२, ३०, २८, २६, २४, २२, २०, १८। छठोमे १६, १५, १४, १३, १२, ११, १०, ९।

५७१ प्र०—सत्त्व अथवा सत्ता किसको कहते है ?

उ०—अनेक समयोमे बँधे हुए कर्मो का विवक्षित कालमे जीवके अस्तित्व होनेका नाम सत्त्व है।

५७२. प्र०—सत्त्वके कितने भेद है ?

उ० —सत्त्व भी चार प्रकारका है—प्रकृति सत्त्व, प्रदेश सत्त्व, स्थिति सत्त्व और अनुभाग सत्त्व।

५७३ प्र०—प्रकृति सत्त्व किसको कहते है ?

उ०—अनेक समयोमे बधी हुई ज्ञानावरण आदि मूल कर्मो और उनकी उत्तर प्रकृतियोके अस्तित्वको प्रकृति सत्त्व कहते है।

५७४. प्र०—प्रदेश सत्त्व किसको कहते है ?

उ०—उन प्रकृति रूप परिणमे पुद्गल परमाणुओके अस्तित्वको प्रदेश सत्त्व कहते है।

५७५. प्र०—एक जीवके अधिकसे अधिक कितना प्रदेश सत्त्व होता है ?

उ०—प्रत्येक ससारी जीव एक-एक समयमे एक-एक समयप्रबद्धका बंध करता है और उन समयप्रबद्धोका एक-एक निषेक क्रमसे निर्जराको प्राप्त होता

है। जिन समयप्रबद्धोके सब निषेक खिर गये उनका तो अस्तित्व ही नही रहा। शेषमेसे किसी समयप्रबद्धका एक निषेक शेष रहा, बाकी निषेक खिर गये, किसी समय प्रबद्धके दो निषेक शेष रहे, शेष निषेक खिर गये। इस क्रमसे जिस समयप्रबद्धका केवल एक ही निषेक खिरा, उसके बाकी सभी निषेक मौजूद है। और जिसका एक भी निषेक नही खिरा उसके सभी निषेक मौजूद हैं। इस तरह बाकी बचे सभी परमाणुओका प्रमाण कुछ कम डेढ गुण हानि से गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण जानना। इतना ही प्रदेश सत्त्व एक जीवके होता है।

५७६ प्र०—स्थितिसत्त्व किसको कहते है ?

उ०—सत्तामे स्थित अनेक समयोमे बधी प्रकृतियोकी स्थितिके सत्त्वको स्थितिसत्त्व कहते है। सो उन प्रकृतियोके जिस समयप्रबद्ध का एक निषेक ही सत्तामे स्थित है उसकी एक समय प्रमाण स्थिति सत्त्व है, जिसके दो निषेक सत्तामे स्थित है, उसका दो समय प्रमाण स्थितिसत्त्व है। और जिस समय-प्रबद्धका एक भी निषेक नही गला उसके प्रथमादि निषेकोका क्रमसे एक दो आदि समय अधिक आबाधाकाल मात्र स्थितिसत्त्व जानना और अन्तिम निषेकका सम्पूर्ण स्थितिबन्ध प्रमाण स्थितिसत्त्व जानना।

५७७ प्र०—अनुभाग सत्त्व किसको कहते हैं ?

उ०—उन अनेक समयोमे बधो हुई प्रकृतियोका जो अनुभाग सत्तामे स्थित है उसे अनुभाग सत्त्व कहते है।

५७८. प्र० —उदय किसको कहते हैं ?

उ०—स्थिति पूरी होने पर कर्मके फल देनेको उदय कहते है।

५७९. प्र०—उदयके कितने भेद है ?

उ०—चार भेद है—प्रकृति उदय, प्रदेश उदय, स्थिति उदय और अनुभाग उदय। मूल प्रकृति अथवा उत्तर प्रकृतिका उदय आना प्रकृति उदय है। उदय रूप प्रकृतिके परमाणुओका फलोन्मुख होना प्रदेश उदय है, स्थितिका उदय होना स्थिति उदय है और अनुभागका उदय होना अनुभाग उदय है।

५८०. प्र०—उदीरणा किसको कहते है ?

उ०—उदयावलीके बाहरके निषेकोको उदयावलीके निषेकोमे मिलाना अर्थात् जिस कर्मका उदयकाल नही आया उस कर्मको उदय कालमे ले आनेका नाम उदीरणा है।

५८१. प्र०—उदयावली किसको कहते है ?

उ०—वर्तमान समयसे लगाकर एक आवली मात्र कालमे उदय आने योग्य निषेकोको उदयावली कहते हैं।

५८२. प्र०—उत्कर्षण किसको कहते है ?

उ०—स्थिति अनुभागके बढनेको उत्कर्षण कहते है।

५८३ प्र०—स्थिति और अनुभाग का उत्कर्षण किस प्रकार होता है ?

उ०—थोड़े समयमे उदय आने योग्य नीचेके निषेकोके परमाणुओको बहुत कालमे उदय आनेके योग्य ऊपरके निषेकोमे मिलाना स्थिति उत्कर्षण होता है। तथा थोडे अनुभाग वाले नीचेके स्पर्धकोके परमाणुओको बहुत अनुभागवाले ऊपरके स्पर्धकोंमे मिलानेसे अनुभाग उत्कर्पण होता है।

५८४. प्र० –अपकर्षण किसको कहते हैं ?

उ०—स्थिति और अनुभागके घटनेका नाम अपकर्षण है।

५८५. प्र०—स्थिति और अनुभागका अपकर्षण कैसे होता है ?

उ०—बहुत कालमे उदय आनेके योग्य ऊपरके निषेकोके परमाणुओको शीघ्र उदयमे आनेवाले नीचेके निषेकोमे मिलानेसे स्थिति अपकर्पण होता है। और बहुत अनुभाग वाले ऊपरके स्पर्धकोके परमाणुओको थोडे अनुभाग वाले नीचेके स्पर्द्धकोमे मिलानेसे अनुभाग अपकर्षण होता है।

५८६ प्र०—उत्कर्षण और अपकर्षणमें कितने परमाणु ऊपर नीचे मिलाये जाते है ?

उ०—विवक्षित सर्व परमाणुओमे उत्कर्पण अथवा अपकर्षण भागहारका भाग देनेसे जो एक भाग मात्र परमाणु आते है उनको यथायोग्य ऊपर अथवा नीचेके निषेकोमे मिलानेसे उत्कर्षण अथवा अपकर्षण होता है।

५८७ प्र०—संक्रमण किसको कहते है ?

उ०—एक प्रकृतिके परमाणुओका सजातीय अन्य प्रकृति रूप होनेका नाम सक्रमण है। जैसे विशुद्ध परिणामोके निमित्तसे पहले बधी हुई असाता वेदनीय प्रकृतिके परमाणुओका सातावेदनीय रूप परिणमन होता है।

५८८ प्र०—संक्रमण करणका नियम क्या है ?

उ०—बन्ध दशामे ही सक्रमण होता है। मूल प्रकृतियोमे सक्रमण नही होता अर्थात् ज्ञानावरण कर्मके परमाणु दर्शनावरण रूप नही हो सकते। उत्तर प्रकृतियोमे भी दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीयमे परस्पर सक्रमण नही होता। तथा एक आयु दूसरी आयु रूप नही हो सकती।

५८९ प्र०— संक्रमणके लिए उपयोगी पांच भागहार कौनसे हैं ?

उ०—उद्वेलन, विध्यात, अध प्रवृत्त, गुण सक्रमण, सर्व संक्रमण, ये पांच भागहार है।

५९०. प्र०—उद्वेलन संक्रमण किसको कहते है ?

उ०—अध.प्रवृत्त आदि तीन करणोके विना ही उद्वेलन प्रकृतिके परमाणुओमे उद्वेलन भागहारका भाग देने पर एक भाग मात्र परमाणु जहाँ अन्य प्रकृति रूप परिणमन करते है उसे उद्वेलन सक्रमण कहते हैं।

५९१. प्र०—उद्वेलन प्रकृतियां कौन सी है ?

उ०—आहारक शरीर, आहारक अगोपाग, सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्र प्रकृति, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपाग, उच्च गोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी ये तेरह उद्वेलन प्रकृतियाँ हैं।

५९२. प्र०—उद्वेलन प्रकृतियोकी उद्वेलना कौन करता है ?

उ०—शुरूकी चार प्रकृतियोकी उद्वेलना तो चारो गतियोके मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं। फिर छै प्रकृतियोकी उद्वेलना एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव करते है। शेप तीन प्रकृतियोकी उद्वेलना तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव करते हैं।

५९३. प्र०—विध्यात संक्रमण किसको कहते हैं ?

उ०—मन्द विशुद्धि वाले जीवके जिनका वन्ध नही पाया जाता, उन विवक्षित प्रकृतियोके परमाणुओमे विध्यात भागहारका भाग देनेपर एक भाग मात्र परमाणु जहां अन्य प्रकृति रूप परिणमन करते हैं उसे विध्यात सक्रमण कहते है।

५९४ प्र०—अधःप्रवृत्त संक्रमण किसको कहते हैं ?

उ०—वधनेवाली प्रकृतियोमे अध.प्रवृत्त भागहारका भाग देने पर एक भाग मात्र परमाणु जहाँ वधको प्राप्त अन्य प्रकृति रूप परिणमन करते है उसे अध प्रवृत्त सक्रमण कहते है।

५९५ प्र०—गुण सक्रमण किसको कहते है ?

उ०—विवक्षित अशुभ प्रकृतियोके परमाणुओमे गुण सक्रमण भागहारका भाग देने पर जहाँ प्रति समय असख्यातगुणे असख्यातगुणे परमाणु अन्य प्रकृति रूप परिणमन करते है उसे गुण सक्रमण कहते है।

५९६ प्र०—सर्व संक्रमण किसको कहते है ?

उ०—प्रति समय विवक्षित प्रकृतिके परमाणु अन्य प्रकृति रूप परिणमन करते करते जहाँ अन्त समयमे अन्तके काण्डककी अन्तिम फाली रूप सभी परमाणु अन्य प्रकृतिरूप परिणमन करते है उसे सर्व सक्रमण कहते है।

५९७ प्र०—भागहारोका प्रमाण क्या है ?

उ०—सर्व सक्रमण भागहारका प्रमाण तो एक है। उससे असंख्यात गुणा गुण सक्रमण भागहारका प्रमाण है। उससे भी असख्यात गुणा उत्कर्षण और अपकर्षण भागहारका प्रमाण है। उससे भी असख्यातगुणा अध प्रवृत्त सक्रम भागहारका प्रमाण है। उससे भी असख्यातगुणा विध्यात सक्रम भागहारका प्रमाण हे। और उससे भी असंख्यातगुणा उद्वेलन सक्रमण भागहारका प्रमाण है।

५९८. प्र०—उपशम करण किसको कहते है ?

उ०—विवक्षित प्रकृतिके जो निषेक उदयावलीसे बाहर है, उनके परमाणुओ-को उदयावलीमे आनेके अयोग्य करनेका नाम उपशम अथवा उपशान्त करण हैं।

५९९ प्र०—उपशमके कितने भेद है ?

उ०—दो है-एक अन्तरकरण रूप उपशम और दूसरा सदवस्था रूप उपशम।

६००. प्र०—अन्तरकरण रूप उपशम किसको कहते है ?

उ०—अन्तरकरणका स्वरूप पहले कहा है, अन्तरकरणके द्वारा आगामी कालमे उदय आने योग्य कर्म परमाणुओको आगे-पीछे उदय आने योग्य करने-का नाम अन्तरकरण रूप उपशम है।

६०१ प्र०—सदवस्था रूप उपशम किसको कहते है ?

उ०—आगामी कालमे उदय आने योग्य निषेकोके सत्तामे रहनेका नाम सदवस्थारूप उपशम है।

६०२. प्र०—उपशम भाव और उपशान्त करणमे क्या अन्तर है ?

उ० - उपशम भाव तो मोहनीय कर्मका ही होता है किन्तु उपशान्तकरण सब प्रकृतियोका होता है। तथा उपशान्तकरण आठवे गुणस्थान पर्यन्त ही होता है किन्तु उपशम भाव ग्यारहवे गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है।

६०३ प्र०—निधत्तिकरण किसको कहते हैं ?

उ०—विवक्षित प्रकृतिके परमाणुओका संक्रमण करनेके और उदयावलीमे आनेके योग्य न होना निधत्तिकरण है।

६०४ प्र०—निकाचितकरण किसको कहते है ?

उ०—विवक्षित प्रकृतिके परमाणुओका सक्रमण करने अथवा उदयावलीमे आनेके अथवा उत्कर्षण अथवा अपकर्षण करनेके योग्य न होना निकाचित-करण है।

०

१२

६०५. प्र०—कर्मोकी वन्ध योग्य प्रकृतियाँ कितनी है ?

उ०—पॉच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, छब्बीस मोहनीय, चार आयु, सडसठ नाम, दो गोत्र और पाँच अन्तराय ये सव एक सौ वीस प्रकृतियाँ बन्ध योग्य है, क्योकि मोहनीय कर्मकी सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन दो प्रकृतियोका वन्ध नही होता, केवल उदय और सत्त्व होता है। तथा नाम-कर्मकी ९३ प्रकृतियोमे से पॉच-वन्धन और पाँच सघात चूंकि शरीर नामकर्मके अविनाभावी है इसलिये वन्ध और उदय अवस्थामे इन दसोका अन्तर्भाव शरीर नामकर्ममे ही कर लिया जाता है। इसी तरह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शके २० भेदोको उन्हीमे गर्भित करके वन्ध और उदय अवस्थामे केवल चारका ही ग्रहण किया जाता है। अत. २ + १० + १६ + = २८ के घटनेसे बन्धयोग्य प्रकृतियाँ १२० है।

६०६. प्र०—कर्मोकी उदययोग्य प्रकृतियाँ कितनी है ?

उ०—५ + ९ + २ + २८ + ४ + ६७ + २ + ५ = १२२ प्रकृतियाँ उदय योग्य होती हैं।

६०७ प्र०—कर्मोकी सत्त्वयोग्य प्रकृतियाँ कितनी है ?

उ०—ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोकी क्रमसे ५ + ९ + २ + २८ + ४ + ९३ + २ + ५ = १४८ प्रकृतियाँ सत्त्वयोग्य है।

६०८ प्र०—घातिया कर्म किसको कहते है ?

उ०—जो जीवके ज्ञानादिक गुणोको घाते उसे घातिया कर्म कहते है।

६०९. प्र०—घातिया कर्मके कितने भेद है ?

उ०—दो भेद है—सर्वघाती और देशघाती।

६१० प्र०—सर्वघाती कर्म किसको कहते है ?

उ०—जो जीवके ज्ञानादिके गुणोको पूरी तरहसे घाते उसे सर्वघाति कर्म कहते हैं।

६११. प्र०—देशघाति कर्म किसको कहते है ?

उ०—जो जीवके ज्ञानादि गुणोको एक देश घाते उसे देशघाति कर्म कहते है।

६१२. प्र०—घातिया कर्म कौन से है ?

उ०—पॉच ज्ञानावरण, दो दर्शनावरण, २८ मोहनीय और पॉच अन्तराय ये सब घातिया कर्म है।

६१३ प्र०—सर्वघाती प्रकृतियॉ कितनी है ?

उ०—इक्कीस है—ज्ञानावरणकी एक केवलज्ञानावरण, दर्शनावरणकी ६, (केवल दर्शनावरण और पॉचो निद्रा) मोहनीयकी १४ (अनन्तानुबन्धी ४, अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, मिथ्यात्व और सम्यक् मिथ्यात्व)।

६१४. प्र०—देशघाती प्रकृतियॉ कितनी और कौनसी हैं ?

उ०—छब्बीस हैं—ज्ञानावरणकी ४ (मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, और मन.पर्ययज्ञानावरण), दर्शनावरणकी ३ (चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, और अवधिदर्शनावरण), मोहनीयकी १४ (सज्वलन ४, नोकषाय ९, सम्यक्त्व १), अन्तराय की ५।

६१५. प्र०—अघातिकर्म किसको कहते है ?

उ०—जो जीवके ज्ञानादि गुणोको न घाते उसे अघाति कर्म कहते है।

६१६. प्र०—अघातिया कर्म कितने है ?

उ०—२ वेदनीय, ४ आयु, ९३ नाम और २ गोत्र ये अघातिकर्म है।

६१७. प्र०—पुण्यकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिसके उदयमे जीवको इष्ट वस्तुकी प्राप्ति हो।

६१८. प्र०—पापकर्म किसको कहते है ?

उ०—जिसके उदयमे जीवको अनिष्ट वस्तुकी प्राप्ति हो।

६१९ प्र०—पुण्य प्रकृतियॉ कितनी और कौन-सी हैं ?

उ०—सातावेदनीय, तीन आयु (तिर्यञ्च, मनुष्य और देव), उच्च गोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच शरीर, पॉच बन्धन, पॉच सघात, तीन अगोपाग, शुभवर्ण ५, शुभगध २, शुभ रस ५, शुभस्पर्श ८, समचतुरस्र सस्थान, वज्रऋषभ नाराचसहनन, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण और तीर्थङ्कर ये ६८ प्रकृतियॉ पुण्य रूप है।

६२० प्र०—पाप प्रकृतियाँ कितनी और कौन-सी है ?

उ०—घातिया कर्मोकी ४७ प्रकृतिया, नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरक आयु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय आदि ४ जातियाँ, शेष पाँच सस्थान, शेप पाँच सहनन, अशुभ वर्ण ५, अशुभ रस ५, अशुभ गध २, अशुभ स्पर्श ८, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति ये पाप प्रकृतियाँ हे।

६२१. प्र०—पुद्गलविपाकी कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिसका फल पुद्गलमे हो। जैसे शरीर नामकर्मके उदयसे पुद्गल ही शरीर रूप होकर परिणमन करता है।

६२२ प्र०—पुद्गलविपाकी प्रकृति कितनी और कौन-सी हैं ?

उ०—पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, छै सस्थान, तीन अगोपाग, छै सहनन, पाच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श, निर्माण, आतप, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, प्रत्येक, साधारण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, ये बासठ प्रकृतियाँ पुद्गल विपाकी है।

६२३ प्र०—भवविपाकी कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिसका फल मनुष्यादि भव रूप हो।

६२४ प्र०—भवविपाकी प्रकृतियाँ कौन-सी है ?

उ०—चारो आयुकर्म भवविपाकी हे।

६२५. प्र०—क्षेत्रविपाकी कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिसके फलसे परलोकको गमन करते समय विग्रह गतिमे जीवका आकार पूर्व शरीरका-सा बना रहे।

६२६ प्र०—क्षेत्रविपाकी प्रकृतियाँ कौन-सी है ?

उ०—चारो आनुपूर्वी नामकर्म क्षेत्र विपाकी है।

६२७. प्र०—जीवविपाकी कर्म किसको कहते है ?

उ०—जिसका फल जीवमे हो।

६२८ प्र०—जीवविपाकी प्रकृतियाँ कितनी और कौन-सी है ?

उ०—दो वेदनीय, दो गोत्र, घातिया कर्मोकी ४७ प्रकृतियाँ तथा नामकर्मकी सत्ताईस (चार गति, पाँच जाति, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त

विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति और तीर्थङ्कर) ये अठहत्तर प्रकृतियाँ जीवविपाकी है।

●

१३

६२९ प्र०—ज्ञानावरण कर्मके कितने बन्ध है ?

उ०—ज्ञानावरण कर्मका एक ही बन्धस्थान है क्योकि ज्ञानावरण कर्मकी पाँचो प्रकृतियाँ दसवे गुणस्थान तक प्रत्येक जीवके बधती है और उसके बाद पाँचो ही नही बधती।

६३० प्र०—दर्शनावरण कर्मके कितने बन्धस्थान है ?

उ०—तीन—नौप्रकृतिक, छेप्रकृतिक और चारप्रकृतिक।

६३१ प्र०—दर्शनावरणके नौप्रकृतिक बन्धस्थानका स्वामी कौन है ?

उ०—मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोके दर्शनावरण कर्मकी नौ प्रकृतियाँ बधती है। आगेके गुणस्थानोमे निद्रा-निद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिका बन्ध नही होता।

६३२ प्र०—दर्शनावरणके छैप्रकृतिक स्थानका स्वामी कौन है ?

उ०—सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथम भाग तक उक्त तीन निद्राओके सिवाय शेष छै प्रकृतियोका बन्ध होता। आगे निद्रा और प्रचलाका बन्ध नही होता है।

○

१४

६३३ प्र०—व्युच्छित्ति किसको कहते है ?

उ०—जिस गुणस्थानमे जिन कर्मप्रकृतियोके बन्ध उदय और सत्त्वकी व्युच्छित्ति कही हो उस गुणस्थान तक ही उन प्रकृतियोका बन्ध, उदय अथवा सत्त्व पाया जाता है, आगेके किसी भी गुणस्थानमे उन प्रकृतियोंको बध, उदय अथवा सत्त्व नही होता। इसी को व्युच्छित्ति कहते है।

६३४. प्र०—मिथ्यात्व गुणस्थानमे किन प्रकृतियोंका बन्ध होता है ?

उ०—मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीर्थंकर, आहारक शरीर और आहारक अगोपाग इन तीन प्रकृतियोका बन्ध नही होता। अत आठो कर्मोकी बन्ध योग्य एक सौ बीस प्रकृतियोमे से तीन घटाने पर ११७ प्रकृतियाँ बन्ध योग्य है।

६३५. प्र०—तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध किसके होता है ?

उ०—चौथे असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सातवें अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त ही केवली या श्रुतकेवलीके चरणोके निकट तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ करते है।

६३६. प्र० –मिथ्यात्वगुणस्थानमे किन प्रकृतियोकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—मिथ्यात्व, हुण्डक सस्थान, नपुसक वेद, असंप्राप्तासृपाटिका सहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय जाति, नरक गति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु, इन सोलह प्रकृतियोके बन्धका कारण मिथ्यात्व ही है। अत मिथ्यात्व गुणस्थानसे आगे इनका बन्ध नही होता।

६३७ प्र०—सासादन गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका बन्ध होता है ?

उ०—पहले गुणस्थानमे जो ११७ का बन्ध होता है उनमेसे मिथ्यात्व गुणस्थानमे जिनकी व्युच्छित्ति होती है उन सोलह प्रकृतियोको घटाने पर सासादन मे १०१ प्रकृतियाँ बन्ध योग्य है।

६३८. प्र०—सासादन गुणस्थानमे किन प्रकृतियोकी बन्धव्युच्छित्ति होती है ?

उ०—अनन्तानुबन्धी चार, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, न्यग्रोध परिमण्डल स्वाति कुब्जक वामन ये चार सस्थान, वज्रनाराच नाराच अर्धनाराच कीलक ये चार सहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यञ्च गति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यचायु, उद्योत ये पच्चीस प्रकृतियाँ अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे बधती है। अत. सासादन गुणस्थानसे आगे इनका बन्ध नही होता।

६३९. प्र० -तीसरे मिश्र गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका बन्ध होता है ?

उ०—दूसरे गुणस्थानमे बन्ध योग्य प्रकृतियाँ १०१ है। उनमेसे व्युच्छित्त हुई पच्चीस प्रकृतियोको घटाने पर शेष ७६ बचती है। किन्तु इस गुणस्थानमे

किसी भी आयु कर्मका बन्ध नही होता। अत पहले गुणस्थानमे नरकायु और दूसरे गुणस्थानमे तिर्यञ्चायुकी बन्धव्युच्छित्ति होनेसे शेष बची मनुष्यायु और देवायुको भी घटा देने पर तीसरे गुणस्थानमे बन्ध योग्य प्रकृतियाँ ७४ रहती है।

६४०. प्र०—मिश्र गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोकी बन्धव्युच्छित्ति होती है ?

उ०—मिश्र गुणस्थानमे किसी भी प्रकृतिकी बन्धव्युच्छित्ति नही होती।

६४१. प्र०—चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका बन्ध होता है ?

उ०—तीसरे गुणस्थानमे ७४ प्रकृतियोका बन्ध होता है। मनुष्यायु, देवायु और तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध बढ जानेसे चौथे गुणस्थानमे बन्ध योग्य प्रकृतियाँ ७७ रहती है।

६४२. प्र०—चौथे गुणस्थानमे किन प्रकृतियोकी बन्ध व्युच्छित्तिहोती है ?

उ०—अप्रत्याख्यानावरण कषाय ४, वज्र ऋषभ नाराच सहनन, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु ये दस प्रकृतियाँ अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदयके निमित्तसे बधती है। अत चौथे गुणस्थानके अन्त समयमे इनके बन्धकी व्युच्छित्ति हो जाती है।

६४३. प्र०—पाँचवें देशविरत गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका बन्ध होता है ?

उ०—चौथे गुणस्थानमे जो ७७ प्रकृतियोका बन्ध होता है उनमेसे चौथे मे व्युच्छिन्न हुई दस प्रकृतियोको घटानेसे शेप रही ६७ प्रकृतियाँ पाँचवेंमे बधती है।

६४४ प्र०—पाँचवें गुणस्थानमे किन प्रकृतियोकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—चार प्रत्याख्यानावरण कपाय अपने उदयके निमित्तसे बधती है। अत पाँचवे गुणस्थानके अन्त समयमे इनकी व्युच्छित्ति हो जाती है।

६४५ प्र०—छठे प्रमत्तविरत गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका बन्ध होता है ?

उ०—पाँचवें गुणस्थानमे ६७ प्रकृतियोका बन्ध होता है, उनमेसे व्युच्छिन्न हुई चार प्रत्याख्यानावरण कषायोको घटानेपर शेप रही ६३ प्रकृतियोका बन्ध छठे गुणस्थानमे होता है।

६४६. प्र०—छठें गुणस्थानमे किन प्रकृतियोकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशस्कीर्ति, अरति, शोक ये छै

प्रकृतियाँ प्रमादके निमित्तसे बधती है। अतः छठे गुणस्थानके अन्त समयमे इनके बन्धकी व्युच्छित्ति हो जाती है।

६४७. प्र०—सातवें अप्रमत्तविरत गुणस्थानमे बन्ध योग्य प्रकृतियाँ कितनी हैं ?

उ०—छठे गुणस्थानमे ६३ प्रकृतियोका वन्ध होता है और ६ की वन्ध व्युच्छित्ति होती है अतः ६३मेसे छै घटानेसे शेप ६७ वचती है। किन्तु सातवेमे आहारक शरीर आहारक अगोपागका बन्ध बढ जानेसे वन्ध योग्य प्रकृतियाँ ५९ है।

६४८. प्र०—सातवे गुणस्थानमे किन प्रकृतियोकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—सातवे गुणस्थानके अन्तमे एक देवायुकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

६४९. प्र०—आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका बन्ध होता है ?

उ०—सातवे गुणस्थानमे ५९ प्रकृतियोका बन्ध होता है। उनमेसे व्युच्छिन्न हुई देवायुको घटानेपर ५८ प्रकृतियोका बन्ध आठवेमे होता है।

६५०. प्र०—आठवें गुणस्थानमे किन प्रकृतियोकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—आठवें गुणस्थानके प्रथम भागसे निद्रा और प्रचलाकी वन्ध व्युच्छित्ति होती है। छठे भागमे तीर्थङ्कर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पञ्चेन्द्रिय, तैजस, कार्मण, आहारक, अगोपाग, समचतुरस्र सस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक अगोपाग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय इन तीस प्रकृतियोकी व्युच्छित्ति होती है। और अन्तिम भागमे हास्य, रति, भय और जुगुप्साकी व्युच्छित्ति होती है।

६५१ प्र०—नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका बन्ध होता है ?

उ०—आठवे गुणस्थानमे बधनेवाली ५८ प्रकृतियोमे व्युच्छिन्न हुई ३६ प्रकृतियोको घटानेपर शेप रही बाईस प्रकृतियोका बन्ध नौवे गुणस्थानमे होता है।

६५२ प्र०—नौवे गुणस्थानमे किन प्रकृतियोकी बन्धव्युच्छित्ति होती है ?

उ०—अनिवृत्तिकरणके पाँच भागोमे क्रमसे पुरुषवेद, सज्वलन क्रोध, सज्वलन मान, सज्वलन माया और सज्वलन लोभकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

६५३ प्र०—दसवे सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका बन्ध होता है ?

उ०—नौवें गुणस्थानमे बन्धयोग्य वाईस प्रकृतियोमेसे व्युच्छिन्न हुई पाँच प्रकृतियोको घटानेपर शेष रही १७ प्रकृतियोका बन्ध दसवे गुणस्थानमे होता है।

६५४ प्र०—दसवें गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

उ०—दसवे गुणस्थानके अन्तमे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, यश.कीर्ति और उच्चगोत्र इन सोलह प्रकृतियोकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

६५५ प्र०—ग्यारहवे उपशान्त कषाय गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियाँ बंधती है ?

उ०—दसवें गुणस्थानमे जो १७ प्रकृतियोका बन्ध होता है उनमेसे व्युच्छिन्न हुई सोलह प्रकृतियोको घटानेपर शेष रही एक सातावेदनीयका बन्ध होता है।

६५६ प्र०—बारहवें और तेरहवें गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका बन्ध होता है ?

उ०—एक सातावेदनीयका बन्ध होता है।

६५७ प्र०—ग्यारहवे बारहवे और तेरहवें गुणस्थानमे किन प्रकृतियोकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—ग्यारहवें, वारहवेमे एक भी प्रकृतिकी वन्धव्युच्छित्ति नही होती। तेरहवे गुणस्थानमे बन्धनेवाली एक सातावेदनीयकी व्युच्छित्ति होती है।

६५८ प्र०—चौदहवें अयोगकेवली गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका बन्ध होता है ?

उ०—एक भी प्रकृतिका बन्ध नही होता।

६५९ प्र०—मिथ्यात्व गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोका होता है ?

उ०—सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यक् मिथ्यात्व, आहारकशरीर, आहारक अंगोपाग और तीर्थङ्कर प्रकृति इन पाँच प्रकृतियोका उदय इस गुणस्थानमे नही होता। अत उदययोग्य १२२ प्रकृतियोमेसे पाँच घटानेपर ११७ का उदय होता है।

६६०. प्र०—मिथ्यात्व गुणस्थानमे उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोकी होती है ?

उ०—मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमे मिथ्यात्व, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चौइन्द्रिय, जाति, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण इन दस प्रकृतियोकी उदय व्युच्छित्ति होती है। यह महाकर्म प्रकृति प्राभृतका उपदेश है।

६६०. षट्खण्डागम, खण्ड ३, पु० ८, पृ० ९।

चूर्णि सूत्रके कर्ता आचार्य यतिवृषभके उपदेशसे मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमे पाँच प्रकृतियोकी उदय व्युच्छित्ति होती है, क्योकि चार जाति और स्थावर प्रकृतियो की उदय व्युच्छित्ति सासादन गुणस्थानमे मानी है।

६६१ प्र०—सासादन गुणस्थानमे उदय कितनी प्रकृतियोका होता है ?

उ०—पहले गुणस्थानमे जो ११७ प्रकृतियोका उदय होता है, उनमेसे व्युच्छिन्न हुई पाँच प्रकृतियोको घटानेपर शेष ११२ रहती है। परन्तु सासादनमे नरक गत्यानुपूर्वीका उदय न होनेसे १११ प्रकृतियाँ उदययोग्य होती है।

६६२ प्र०—सासादन गुणस्थानमे उदय व्युच्छित्ति कितनी प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—सासादन गुणस्थानके अन्तिम समयमे अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ, एकेन्द्रिय आदि चार जाति और स्थावर इन नौ प्रकृतियोकी उदय व्युच्छित्ति होती है।

६६३. प्र०—मिश्र गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका उदय होता है।

उ०—दूसरे गुणस्थानमे १११ प्रकृतियोका उदय होता है। उनमेसे व्युच्छिन्न नौ प्रकृतियोको घटानेपर शेष १०२ मेसे नरकगत्यानुपूर्वीके सिवाय (क्योकि वह दूसरे गुणस्थानमे घटाई जा चुकी है) शेष तीन आनुपूर्वी घटानेपर शेष रही ९९ प्रकृतियोमे एक सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय यहाँ होनेसे तीसरे गुण-स्थानमे उदययोग्य प्रकृतियाँ १०० है।

६६४. प्र०—मिश्र गुणस्थानमे आनुपूर्वीका उदय क्यो नही होता ?

उ०—तीसरे गुणस्थानमे मरण न होनेसे किसी भी आनुपूर्वीका उदय नही होता।

६६५. प्र०—तीसरे गुणस्थानमे उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—एक सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृतिकी उदय व्युच्छित्ति तीसरे गुणस्थानमे होती है ?

६६६. प्र०—चौथे गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—तीसरे गुणस्थानमे १०० प्रकृतियोका उदय होता है। उनमेसे व्युच्छिन्न प्रकृति सम्यक् मिथ्यात्वको घटानेपर ९९ शेष रहती है। इनमे चारो आनुपूर्वी और सम्यक्त्व प्रकृतिको मिलाने से १०४ प्रकृतियोका उदय चौथे गुणस्थानमे होता है।

६६७. प्र०—चौथे गुणस्थानमे उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, नरकायु, देवायु, नरकगति, देवगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपाग, चारो आनुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, इन सतरह प्रकृतियोकी उदय व्युच्छित्ति चौथे अविरत सम्यग्दृष्टी गुणस्थानमे होती है।

६६८ प्र०—पाँचवे गुणस्थानमे उदय कितनी प्रकृतियोका होता है ?

उ०—चौथे गुणस्थानमे जो १०४ प्रकृतियोका उदय कहा है, उनमेसे व्युच्छिन्न हुई १७ प्रकृतियोको घटानेपर शेष ८७ प्रकृतियोका उदय होता है।

६६९. प्र०—पाँचवें गुणस्थानमे उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोकी होती है ?

उ०—प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगति, उद्योत, नीच गोत्र इन आठ प्रकृतियो की उदय व्युच्छित्ति पाँचवे देशविरत गुणस्थानमे होती है।

६७०. प्र०—छठे गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोका होता है ?

उ०—पाँचवे गुणस्थानमे ८७ प्रकृतियोका उदय कहा है। उनमेसे व्युच्छिन्न प्रकृति आठके घटानेपर शेष रही ७९ प्रकृतियोमे आहारक शरीर और आहारक अगोपागको मिलानेसे ८१ प्रकृतियोका उदय छठे गुणस्थानमे होता है।

६७१. प्र०—छठे गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोकी होती है ?

उ०—निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, आहारक शरीर, आहारक अगोपाग इन पाँच प्रकृतियोकी उदय व्युच्छित्ति छठे प्रमत्त सयत गुणस्थानमे होती है।

६७२ प्र०—सातवें गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—छठे गुणस्थानमे जो ८१ प्रकृतियोका उदय होता है उनमेसे व्युच्छिन्न हुई पाँच प्रकृतियोको घटानेपर शेष ७६ प्रकृतियोका उदय होता है।

६७३. प्र०—सातवें गुणस्थानमे उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोकी होती है ?

उ०—अर्धनाराच, कीलक, असप्राप्तासृपाटिका सहनन, सम्यक्त्व प्रकृति इन चार प्रकृतियोकी उदय व्युच्छित्ति सातवे अप्रमत्त सयत गुणस्थानमे होती है।

६७४. प्र०—आठवें गुणस्थानमे उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—सातवे गुणस्थानमे जो ७६ प्रकृतियोका उदय कहा है, उनमेसे व्युच्छिन्न हुई चार प्रकृतियोंको घटानेपर शेष ७२ प्रकृतियोका उदय होता है।

६७५ प्र०—आठवें गुणस्थानमे उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ?

उ०—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन छै प्रकृतियोकी उ
व्युच्छित्ति आठवे अपूर्वकरण गुणस्थानमे होती है।

६७६. प्र०—नौवें गुणस्थानमे उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है ?

उ०—आठवे गुणस्थानमे जो ७२ प्रकृतियोका उदय होता है उनमेसे व्युच्छि
हुई छै प्रकृतियोको घटानेपर शेष रही ६६ प्रकृतियोका उदय होता है।

६७७ प्र०—नौवें गुणस्थानमे उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है

उ०—स्त्रीवेद, नपुसकवेद, पुरुषवेद, सज्वलन क्रोध मान माया, इन
प्रकृतियोकी उदय व्युच्छित्ति नौवे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे होती है।

६७८ प्र०—दसवे गुणस्थानमें उदय कितनी प्रकृतियोका होता है ?

उ०—नौवें गुणस्थानमे जो ६६ प्रकृतियोका उदय होता है उनमेसे व्युच्छि
हुई छै प्रकृतियोको घटा देनेपर शेष रही ६० प्रकृतियोका उदय होता है।

६७९. प्र०—दसवे गुणस्थानमें उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोकी होती है

उ०—केवल एक सज्वलन लोभ की।

६८०. प्र०—ग्यारहवे गुणस्थानमे उदय कितनी प्रकृतियोका होता है ?

उ०—दसवें गुणस्थानमे जो ६० प्रकृतियोका उदय होता है उनमेसे व्युच्छि
हुई एक प्रकृतिको घटा देनेपर शेष रही ५९ प्रकृतियोका उदय होता है।

६८१. प्र०—ग्यारहवे गुणस्थानमे उदय व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोक होती है ?

उ०—व्रजनाराच और नाराच संहननकी उदय व्युच्छित्ति ग्यारहवे उपशान्त
कषाय गुणस्थानमे होती है।

६८२ प्र०—बारहवें गुणस्थानमे उदय कितनो प्रकृतियोका होता है ?

उ०—ग्यारहवे गुणस्थानमे जो ५९ प्रकृतियोका उदय होता है उनमेसे व्युच्छि
हुई दो प्रकृतियोको घटा देनेपर शेष रही ५७ प्रकृतियोका उदय होता है।

६८३ प्र०—बारहवे गुणस्थानमे उदय व्युच्छित्ति कितनी प्रकृतियोकी होती है ?

उ०—निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोकी उदय व्युच्छित्ति क्षीण कषाय
गुणस्थानके उपान्त्य समयसे होती है। और पॉच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण,
पॉच अन्तराय, इन चौदह प्रकृतियोकी उदय व्युच्छित्ति अन्तिम समयमे होती है।

६८४. प्र०—तेरहवे गुणस्थानमे उदय कितनी प्रकृतियोका होता है ?

उ०—बारहवे गुणस्थानमे जो ५७ प्रकृतियोका उदय होता है उनमेसे

व्युच्छिन्न हुई सोलह प्रकृतियोको घटानेपर ४१ प्रकृतियाँ शेष रहती है। उनमे एक तीर्थङ्कर प्रकृतिको मिला देनेपर ४२ प्रकृतियाँ उदययोग्य होती है।

६८५. प्र०—तेरहवे गुणस्थानमे उदयव्युच्छित्ति किन प्रकृतियोकी होती है?

उ०—एक वेदनीय, औदारिक तैजस कार्मण शरीर, छह सस्थान, औदारिक अगोपाग, वज्रऋषभ नाराच सहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उछ्वास, दो विहायोगतियाँ, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुस्वर, निर्माण, इन तीस प्रकृतियोकी उदय व्युच्छित्ति तेरहवे सयोग केवली गुणस्थानमे होती है।

६८६ प्र०—चौदहवे गुणस्थानमे उदय कितनी प्रकृतियोंका होता है?

उ०—तेरहवें गुणस्थानमे जो ४२ प्रकृतियोका उदय होता है उनमेसे व्युच्छिन्न हुई तीस प्रकृतियोको घटानेपर शेप रही बारह प्रकृतियोका उदय होता है।

६८७ प्र०—चौदहवें गुणस्थानमें उदयव्युच्छित्ति किन प्रकृतियोकी होती है?

उ०—एक वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्ति, सुभग, आदेय, यश कीर्ति, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र, इन तेरह प्रकृतियोकी उदय व्युच्छित्ति अयोगकेवली गुणस्थानमे होती है।

६८८. प्र०—मिथ्यात्व गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका सत्त्व होता है?

उ०—एक सौ अडतालीस प्रकृतियो का।

६८९. प्र०—सासादन गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका सत्त्व होता है?

उ०—एक सौ पैतालीस प्रकृतियोका, क्योकि यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृति, आहारक शरीर और आहारक अगोपाग इन तीन प्रकृतियोकी सत्ता नही रहती।

६९०. प्र०—मिश्र गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका सत्त्व रहता है?

उ०—तीर्थङ्कर प्रकृतिके विना १४७ प्रकृतियो का।

६९१ प्र०—चौथे गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका सत्त्व रहता है?

उ०—१४८ प्रकृतियो का। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टीके १४१ का ही सत्त्व रहता है, अनन्तानुवन्धी क्रोध मान माया लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृतिका सत्त्व नही रहता।

६९२. प्र०—चौथे गुणस्थानमे सत्त्व व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोकी होती है?

उ०—एक नरकायुकी।

६९३. प्र०—पाँचवे गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका सत्त्व रहता है?

उ०—एक नरकायुके विना १४७ का। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टीकी अपेक्षा १४० का ही सत्त्व होता है।

६९४. प्र०—पाँचवें गुणस्थानमें सत्त्व व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है?

उ०—एक तिर्यञ्चायु की।

६९५ प्र०—छठे गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है?

उ०—नरकायु और तिर्यञ्चायुके विना १४६ का। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टी की अपेक्षा १३९ का ही सत्त्व रहता है।

६९६ प्र०—सातवें गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोका सत्त्व रहता है?

उ०—छठे गुणस्थानकी तरह १४६ का अथवा १३९ का।

६९७. प्र०—आठवें गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है?

उ०—आठवें गुणस्थानसे दो श्रेणी प्रारम्भ होती है—उपशम श्रेणि और क्षपक श्रेणि। द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी उपशम श्रेणि ही चढता है। अतः उनके, सातवें गुणस्थानमे जो १४६ का सत्त्व कहा है उनमेसे अनन्तानुवन्धी क्रोध मान माया लोभको घटानेपर १४२ का सत्त्व होता है। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टी यदि उपशम श्रेणि चढता है तो उसके सातवें गुणस्थानकी तरह १३९ का सत्त्व होता है। और क्षपक श्रेणिवालेके अनन्तानुवन्धी ४, दर्शन मोहनीय ३, और मनुष्यायुके सिवाय तीन आयुके विना १३८ का ही सत्त्व होता है।

६९८. प्र०—नौवें गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका सत्त्व होता है?

उ०—आठवे गुणस्थानकी तरह इस गुणस्थानमे भी उपशम श्रेणिवाले द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टिके १४२, क्षायिक सम्यग्दृष्टीके १३९ और क्षपक श्रेणिवालेके १३८ प्रकृतियोका सत्त्व होता है।

६९९ प्र०—नौवें गुणस्थानमे किन प्रकृतियोकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है?

उ०—नौवे गुणस्थानके प्रथम भागमे नरकगति, तिर्यञ्चगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौइन्द्रिय जाति, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, उद्योत, आतप, साधारण, सूक्ष्म और स्थावर इन सोलह प्रकृतियोकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। दूसरे भागमे अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, इन आठ प्रकृतियोकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। तीसरे भागमे नपुसक वेद, चौथे भागमे स्त्रीवेद, पाँचवे भाग मे छै नोकपाय, छठे भागमे पुरुषवेद, सातवेमे सज्वलन क्रोध, आठवेमे सज्वलन मान और नौवे भागमे सज्वलन माया इस प्रकार नौवे गुणस्थानमे छत्तीस

प्रकृतियोकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। यह सत्त्व व्युच्छित्ति क्षपक श्रेणिवालेके ही होती है।

७०८ प्र०—दसवे गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है ?

उ०—दसवेमे नौवे गुणस्थानकी तरह उपशम श्रेणीवाले द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टीके १४२ ओर क्षायिक सम्यग्दृष्टिके १३९ का सत्त्व रहता है। तथा क्षपक श्रेणिवालेके नौवे गुणस्थानमे जो १३८ प्रकृतियोका सत्त्व है उनमेसे व्युच्छिन्न हुई ३६ प्रकृतियोको घटाने पर शेष रही १०२ प्रकृतियोका सत्त्व रहता है।

७०१. प्र०—दसवे गुणस्थानमे किन प्रकृतियोकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—एक सज्वलन लोभकी व्युच्छित्ति होती है।

७०२ प्र०—ग्यारहवे गुणस्थानमे सत्त्व कितनी प्रकृतियोका होता है ?

उ०—दसवे गुणस्थानकी तरह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टिके १४२ और क्षायिक सम्यग्दृष्टीके १३९ का सत्त्व रहता है। इस गुणस्थानमे क्षपक श्रेणि नही है।

७०३ प्र०—बारहवे गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका सत्त्व रहता है ?

उ०—दसवे गुणस्थानमे क्षपक श्रेणि वालेके जो १०२ प्रकृतियोका सत्त्व होता है उनमेसे व्युच्छिन्न प्रकृति सज्वलन लोभको घटाने पर शेष १०१ प्रकृतियोका सत्त्व होता है।

७०४. प्र०—बारहवे गुणस्थानमे सत्त्व व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोकी होती है ?

उ०—बारहवे गुणस्थानमे उदय व्युच्छित्तिकी तरह पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, निद्रा, प्रचला और पाँच अन्तराय इन सोलह प्रकृतियोकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

७०५ प्र०—तेरहवें गुणस्थानमे सत्त्व कितनी प्रकृतियोका होता है ?

उ०—बारहवे गुणस्थानमे जो १०१ का सत्त्व कहा है उनमेसे व्युच्छिन्न १६ प्रकृतियोको घटाने पर शेष रही ८५ प्रकृतियोका सत्त्व तेरहवे सयोगकेवली गुणस्थानमे होता है।

७०६. प्र०—चौदहवें गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका सत्त्व रहता है ?

उ०—चौदहवे गुणस्थानमे तेरहवे गुणस्थानकी तरह ८५ प्रकृतियोका सत्त्व रहता है परन्तु उपान्त्य समयमे ७२ और अन्तिम समयमे १३ प्रकृतियोकी सत्ताके व्युच्छिन्न (नाश) हो जानेसे जीवका मोक्ष हो जाता है।

७०७. प्र०—चौदहवें गुणस्थानमे किन प्रकृतियोकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है ?

उ०—चौदहवे अयोगकेवली गुणस्थानके उपान्त्य समयमे पॉच शरीर, पॉच बन्धन, पॉच संघात, छै सस्थान, तीन अगोपाग, छै सहनन, पॉच वर्ण, दो गन्ध, पॉच रस, आठ स्पर्श, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दु.स्वर, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशस्कीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उछ्वास, एक वेदनीय, नीच गोत्र इन बहत्तर प्रकृतियोकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। और अन्त समयमे एक वेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशकीर्ति, तीर्थंकर, मनुष्यायु और उच्च गोत्र, मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन तेरह प्रकृतियोकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

७०८ प्र०—किन प्रकृतियोकी बन्धव्युच्छित्ति उदयव्युच्छित्तिके पीछे होती है ?

उ०—देवायु, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अगोपाग, आहारक शरीर, आहारक अगोपाग, अयश कीर्ति इन आठ प्रकृतियोकी उदय व्युच्छित्ति पहले होती है, पीछे बन्धव्युच्छित्ति होती है।

७०९. प्र०—किन प्रकृतियोकी उदयव्यच्छित्ति और बन्धव्युच्छित्ति एक साथ होती है ?

उ०—मिथ्यात्व, भय, जुगुप्सा, हास्य, रति, पुरुषवेद, सज्वलन लोभ के बिना १५ कषाय, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय आदि चार जाति, साधारण, अपर्याप्त इन इकतीस प्रकृतियोका बन्ध और उदय दोनो एक साथ व्युच्छिन्न होते है।

७१०. प्र०—किन प्रकृतियोको उदयव्युच्छित्ति बन्धव्युच्छित्तिके पीछे होती है ?

उ०—पूर्वोक्त ८+३१=३९ प्रकृतियोसे शेप जो इक्यासी प्रकृतियॉ रहती है उनका बन्ध व्युच्छेद पहले और उदय व्युच्छेद पीछे होता है।

७११ प्र०—परोदयसे बंधनेवाली प्रकृतियाँ कौन-सी हैं ?

उ०—तीर्थंकर, नरकायु, देवायु, नरक गति, देवगति, नरक गत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपाग, आहारक शरीर, आहारक अगोपाग ये ग्यारह प्रकृतिया परोदयसे बधती है, अर्थात् तीर्थंकर प्रकृतिके उदयवालेके तीर्थंकरका बन्ध नही होता। इसी तरह नारकीके नरकायुका और देवके देवायुका बन्ध नही होता।

७१२ प्र०—स्वोदयसे बन्धनेवाली प्रकृतियाँ कौन है ?

उ०—पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय, चार दर्शनावरण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, तैजस और कार्मण शरीर, निर्माण, अगुरु लघु, वर्ण आदि चार, और मिथ्यात्व ये सत्ताईस प्रकृतियाँ स्वोदयसे बधती है। अर्थात् जिसके मिथ्यात्वका उदय होता है उसीके मिथ्यात्वका बन्ध होता है इसी तरह शेष २६ प्रकृतियोके विषयमे भी जानना।

७१३ प्र०—स्वोदय और परोदयसे बंधनेवाली प्रकृतियाँ कौन-सी है ?

उ०—परोदय बन्धी ११ और स्वोदय बन्धी २७ प्रकृतियोके बिना शेष ८२ प्रकृतियाँ स्वोदयसे भी बधती है और परोदयसे भी बधती है।

७१४. प्र०—निरन्तर बधनेवाली प्रकृतियां कौन सी हैं ?

उ०—सैतालीस ध्रुवप्रकृतियाँ, तीर्थंकर, आहारक शरीर, आहारक अगोपाग, और चार आयु ये चोवन प्रकृतियाँ निरन्तर बँधती है।

७१५ प्र०—ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ कौन सी है ?

उ०—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस और कार्मण शरीर, वर्ण आदि ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण ये सैतालीस प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धी है।

७१६ प्र०—निरन्तरबन्ध और ध्रुवबन्धमे क्या भेद है ?

उ०—जबतक बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती तबतक जिन प्रकृतियोका प्रति समय अवश्य बन्ध होता है उन्हे ध्रुवबन्धी कहते है। उक्त सैतालीस प्रकृतियोका बन्धव्युच्छित्तिसे पहले प्रति समय सदा निरन्तरबन्ध होता है। किन्तु तीर्थंकर और आहारकका बन्ध प्रारम्भ होनेके बाद जिन गुणस्थानोमे उनका बन्ध पाया जाता है उनमे उनका प्रति समय निरन्तरबन्ध होता है। तथा आयुका बन्ध जिस कालमे होना योग्य है उस कालमे आयुबन्ध होने पर अन्तर्मुहूर्त तक निरन्तर बन्ध होता रहता है। इसलिये इनको निरन्तरबन्धी कहते हैं।

७१७. प्र० सान्तरबन्धी प्रकृतियाँ कौन सी हैं ?

उ०—स्त्रीवेद, नपुसकवेद, चार जाति, असातावेदनीय, नरक गति, नरकगत्यानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अरति, शोक, अन्तके पाँच सस्थान, पाँच सहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति ये चौतीस प्रकृतियाँ सान्तर रूपसे बँधती है।

७१८ प्र०—सान्तरबन्धी प्रकृति किसे कहते हैं ?

उ०—वन्धकाल वीतनेसे जिस-जिस प्रकृतिकी वन्ध व्युच्छित्ति सम्भव है वह सान्तरवन्धी प्रकृति है। उक्त चौंतीस प्रकृतियोंका निरन्तर वन्धकाल एक समय है। अत. ये सान्तरवन्धी है।

७१९. प्र०—सान्तर निरन्तरवन्धी प्रकृतियां कौनसी हैं ?

उ० ५४ निरन्तरवन्धी और ३४ सान्तरवन्धी प्रकृतियोंके विना शेप वत्तीस प्रकृतियां सान्तर रूपसे भी वँधती है और निरन्तर रूपसे भी वँधती है। जवतक इनकी प्रतिपक्षा प्रकृति रहती है तव तक ये सान्तरवन्धी है और प्रतिपक्षीके अभावमे निरन्तरवन्धी है। जैसे जहाँ अन्य गतिका भी वन्ध पाया जाता है वहाँ देवगति सप्रतिपक्षा होनेसे सान्तरवन्धी है और जहाँ केवल देवगतिका की वन्ध सम्भव है वहाँ निष्प्रतिपक्ष होनेसे देवगति निरन्तरवन्धी है।

७२० प्र०—सादिवन्ध किसको कहते हैं ?

उ०—जिस कर्मके वन्धका अभाव होकर पुनः वन्ध होता है उसके वन्धको सादिवन्ध कहते है। जैसे, उपशम श्रेणिमे वन्धका अभाव करके पुनः नीचे उतरकर वन्धका प्रारम्भ करनेवाले जीवोके सादिवन्ध होता है।

७२१ प्र०—अनादिवन्ध किसको कहते हैं ?

उ०—जिस वन्धके आदिका अभाव होता है उसे अनादिवन्ध कहते है। जैसे, उपशमश्रेणि पर नही चढे हुए मिथ्या दृष्टि जीवोके अनादि वन्ध होता है।

७२२. प्र०—ध्रुववन्ध किसको कहते है ?

उ०—अभव्य जीवोके वन्धको ध्रुववन्ध कहते है, क्योंकि अभव्यके निरन्तर वँधनेवाली ध्रुव प्रकृतियोके वन्धका कभी भी अभाव नही होता।

७२३ प्र०—अध्रुववन्ध किसको कहते है ?

उ०—भव्य जीवोके वन्धको अध्रुव वन्ध कहते हैं। क्योकि उनके वन्धका अभाव भी पाया जाता है।

७२४ प्र०—प्रकृतिबन्धापसरण किसे कहते है ?

उ०—प्रकृतिवन्धका क्रमसे घटना प्रकृतिबन्धापसरण है।

७२५ प्र०—स्थितिबन्धापसरण किसको कहते है ?

उ०—स्थितिबन्धका क्रमसे घटना स्थितिबन्धापसरण है।

७२६. प्र०—स्थितिकाण्डक किसे कहते है ?

७२०-७२३—गो० कर्म०, गा० १२३।

उ०—ऊपरके निषेकोको क्रमसे नीचेके निषेकोमे क्षेपण करके स्थितिको घटानेका नाम स्थितिकाण्डक है।

७२७. प्र०—स्थितिकाण्डक आयाम किसको कहते है ?

उ०—एक काण्डक सम्बन्धी निषेकोका नाश करके जितनी स्थिति घटाई हो उसके प्रमाणका नाम स्थितिकाण्डक आयाम है।

७२८ प्र०—काण्डक किसको कहते है ?

उ०—काण्डक नाम पर्वका है। जैसे ईखमे पोरिया होती है वैसे ही मर्यादा रूप स्थानका नाम काण्डक है।

७२९ प्र०—अनुभाग काण्डक किसको कहते है ?

उ०—बहुत अनुभागवाले ऊपरके स्पर्धकोका अभाव करके उनके परमाणुओ-को थोडे अनुभागवाले नीचेके स्पर्धकोमे क्रमसे मिलाकर अनुभागका घटाना अनुभाग काण्डक है।

७३०. प्र०—अनुभाग काण्डकोत्करण काल किसको कहते है ?

उ०—अनुभाग काण्डकका घात अन्तर्मुहूर्तमे सम्पूर्ण होता है उस कालका नाम अनुभाग काण्डकोत्करण काल है।

७३१ प्र०—आयाम किसको कहते है ?

उ०—आयाम नाम लम्बाईका है। कालके समय भी एक साथ न होकर क्रमसे एकके बाद एक करके आते है। इसलिये कालके प्रमाणकी सज्ञा आयाम है। कही-कही ऊपर ऊपर जो निषेकरचना होती है उसको भी आयाम नामसे कहा गया है। जैसे स्थितिके प्रमाणको स्थिति आयाम, स्थिति काण्डकके निषेकोके प्रमाणको स्थिति काण्डक आयाम और गुणश्रेणीके निषेकोके प्रमाणको गुणश्रेणी आयाम कहते है।

७३२. प्र० – गुणश्रेणि किसको कहते है ?

उ०—गुण कहते है गुणकारको। जहाँ गुणित क्रमसे निषेकोमे द्रव्य दिय जाता है उसका नाम गुणश्रेणि है।

७३३ प्र०—गुणहानि किसको कहते है ?

उ०—गुणकार रूप हीन हीन द्रव्य जहाँ पाये जाये उसे गुणहानि कहते है

७३४. प्र० – फालि किसको कहते है ?

उ०—समुदाय रूप एक क्रियामे जुदे-जुदे खण्ड करके भेद करनेका नाम फालि है। जैसे उपशमन कालमे प्रथम समयमे जितना द्रव्य उपशमाया वह उपशमकी प्रथम फालि है, दूसरे समयमे जितना द्रव्य उपशमाया वह दूसरी फालि है। इसी तरह अन्यत्र भी जानना।

७३५. प्र०—आगाल किसको कहते है?

उ०—अपकर्पण करके द्वितीय स्थितिके निषेकोके परमाणुओको प्रथम स्थिति-के निषेकोमे मिलानेका नाम आगाल है।

७३६. प्र०—प्रत्यागाल किसको कहते है?

उ०—उत्कर्षण करके प्रथम स्थितिके निपेकोके परमाणुओको द्वितीय स्थिति-के निषेकोमे मिलाना प्रत्यागाल है।

७३७ प्र०—प्रथम स्थिति किसको कहते है?

उ०—विवक्षित प्रमाणको लिए हुए नीचेके निषेकोको प्रथम स्थिति कहते है।

७३८. प्र०—द्वितीय स्थिति किसको कहते है?

उ०—ऊपरवर्ती समस्त निषेकोको द्वितीय स्थिति कहते है।

७३९. प्र०—उदयावली किसको कहते है?

उ०—वर्तमान समयसे लेकर आवली मात्र कालको और उस कालमे स्थित निषेकोको आवली अथवा उदयावली कहते है।

७४० प्र०—द्वितीयावली अथवा प्रत्यावली किसको कहते है?

उ०—उदयावलीके ऊपरवर्ती आवलीको द्वितीयावली अथवा प्रत्यावली कहते है।

७४१ प्र०—अचलावली अथवा आबाधावली किसको कहते है?

उ०—बन्ध समयसे लगाकर एक आवली काल तक कर्मोकी उदीरणा आदि नही हो सकती। अत. उस आवलीको अचलावली अथवा आबाधावली कहते है।

७४२ प्र०—अतिस्थापनावली किसको कहते है?

उ०—द्रव्यका निक्षेपण करते हुए जिन आवलीमात्र निषेकोमे द्रव्यका निक्षेपण नही किया जाता है उसका नाम अतिस्थापनावली है।

७४३ प्र०—द्रव्य निक्षेपणका क्या अर्थ है?

उ०—अन्य निषेकोके परमाणुओको अन्य निषेकोमे मिलानेका नाम द्रव्य निक्षेपण है।

७४४ प्र०—उच्छिष्टावली किसको कहते है?

उ०—कर्मोका स्थिति सत्त्व घटते समय जो आवली मात्र स्थिति शेष रह जाती है उसे उच्छिष्टावली कहते है।

विषयानुक्रमणी

फ

ब

ह

●